संयुक्त प्रांत के तीर्थ-स्थान

संपादक
सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता
श्रीदुलारेलाल
(सुधा-संपादक)

संयुक्त प्रांत के तीर्थ-स्थान

[२२ सादे चित्रों-सहित]

लेखक

साहित्यरत्न श्रीलक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी' एम्० ए०

[भाग्य का विधान, स्वप्नप्रदेश हृदय-ध्वनि, दुलारे-दोहावली-
समीक्षा, अंत्याक्षरी-प्रकाश, शिमला-गाइड, संयुक्त प्रांत की
पहाड़ी यात्राएँ, मुग़ल-राज्य की राजधानियाँ,
भारतवर्ष के कुछ दर्शनीय स्थान, रचना-बोध,
मातृभाषा के पुजारी आदि के रचयिता
और संपादक 'खत्री-हितैषी'
(मासिक), भूतपूर्व संपादक
'प्रकाश' (मासिक)]

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
२६, लाटूश रोड
लखनऊ

प्रथम बार] सं० २००३ वि० [सजिल्द ३)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, कास्थवेट रोड, इलाहाबाद
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. लखनऊ-ग्रंथागार, लखनऊ
५. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
६. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
७. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
८. एन्० एम्० भटनागर एंड ब्रादर्स, उदयपुर
९. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका [illegible] हमें लिखिए, [illegible] वहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ
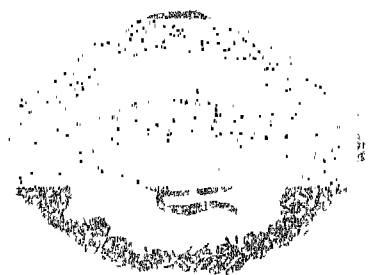
परमपूज्य, आदरणीय स्वर्गीय पितामह
श्रीसुंदरलालजी टंडन
की
पुण्य स्मृति में !

लक्ष्मीनारायण टंडन
'प्रेमी'

आपसे कुछ—

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। यहाँ की पृथ्वी का कण-कण महत्त्व-पूर्ण है। यों तो संसार के देशों में अनेक तीर्थ-स्थान हैं, पर भारतवर्ष में तीर्थ-स्थानों की भरमार है। तीर्थ-स्थान से तात्पर्य ही है पवित्र स्थान, और भारत की भूमि अपने महापुरुषों के महान् कृत्यों के कारण अपने को कृतकृत्य कर चुकी है। भारत के हिंदू हमें जितनी तीर्थ-यात्रा करते दिखाई देते हैं, उतने और कहीं के भी नहीं। यों तो ईसाइयों और मुसलमानों के भी जेरूसलाम, वेटिकन सिटी, मक्का और मदीना आदि तीर्थ हैं। भारतवर्ष में अजमेर-शरीफ़-जैसे अनेक स्थान तथा दरगाहें हैं, जो मुसलमानों के पवित्र स्थान हैं।

हमारे 'धर्म' के अर्थ बहुत व्यापक हैं, और 'तीर्थ' के भी। भारतवर्ष ने सदा ही आध्यात्मिक विकास तथा आत्मिक उन्नति को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है। अतः अतीत काल से हमारे ऋषि-मुनियों ने अपनी तपस्या, त्याग और परोपकार से अपनी जन्मभूमि तथा निवास-स्थान को सार्थक 'तीर्थ' नाम दिलवाया है। मैंने कहा है कि भारतवर्ष में अनेक तीर्थ हैं परंतु संयुक्त प्रांत में तो तीर्थों की भरमार है, जहाँ भारत के कोने-कोने से यात्री आते रहते हैं। इन यात्रियों को नवीन स्थान में आकर पंडों पर निर्भर होना पड़ता है, और जो कुछ वे दिखा देते या स्थान की महत्ता बता देते हैं, उसी पर विश्वास और संतोष करना पड़ता है। यदि यात्री जिज्ञासु हुआ, तो कुछ पूछ-पाछकर और

देख या जान लेता है—बहुत कुछ छूट भी जाता है। बेचारा इसी में अपने को धन्य समझता है—पुण्य का भागी तो वह हो ही गया, तीर्थ-यात्रा करने से।

यदि इन यात्रियों को कोई ऐसी पुस्तक प्राप्त हो सके, जिसमें संयुक्त प्रांत के सब तीर्थ-स्थानों का वर्णन हो, तो थोड़े समय में और सुविधा-पूर्वक वे इन स्थानों को अच्छी तरह देख-समझ सकते हैं। इन स्थानों पर अलग-अलग छोटी-छोटी पुस्तकें या लेख समय-समय पर निकले हैं। किंतु अब तक कोई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आई, जिसमें संयुक्त प्रांत के सब महत्त्व-पूर्ण और प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों का वर्णन हो, जिसे वे सुविधा-पूर्वक ख़रीद सकें। इसी आवश्यकता को दृष्टिकोण में रखकर प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है।

हमारे पुरखों ने बहुत सोच-समझकर तीर्थ-यात्रा करने का आदेश दिया है। वे जानते थे, यदि 'यात्रा के लाभ' के नाम पर देश-वासियों से घूमने को कहा जायगा, तो बहुत कम लोग 'यात्रा का लाभ' उठाएँगे— रुपए-पैसे की क़िल्लत, सांसारिक झंझट तथा अस्वास्थ्य आदि न-जाने कितने बहाने निकल आएँगे। परंतु प्रकृति से ही धर्म-भीरु हिंदू 'धर्म' के नाम पर अपना परलोक बनाने के लिये सारी कुपरिस्थितियों की अवहेलना करते हुए धर्म-लाभ के हेतु अवश्य यात्रा करेंगे, और अप्रत्यक्ष रूप में यात्रा के सब लाभों को भोग सकेंगे। तीर्थ-यात्रा करने से अनेक लाभ हैं—स्थान-स्थान की वेष-भूषा, रहन-सहन, आचार-विचार, रंग-रूप, भाषा, वनस्पति, पैदावार आदि भिन्न-भिन्न होती है, अतः तीर्थ-यात्री का ज्ञान और अनुभव विस्तृत होता है। धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक कलात्मक, सामाजिक, आर्थिक तथा सामयिक ज्ञान तो होता ही है— मंदिर और मूर्ति के सामने जाकर, श्रद्धा से नत-मस्तक हो, अपने कालुष्य का विसर्जन कर कुछ समय तक यात्री आत्मविस्मृति करके इस लोक से उस लोक

पहुँच जाता है। निश्चय रूप से स्थायी तथा सात्विक प्रभाव उसके हृदय और आत्मा पर पड़ता है। उसके हृदय में संसार की अनित्यता और विलास तथा वैभव के क्षणिक एवं मिथ्या अस्तित्व का ज्ञान उदय होता है, और अपने भविष्य के संशोधित जीवन तथा इस लोक और परलोक पर वह सोचने लगता है। परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति, सद्भावनाओं, सद्विचारों, सत्कर्मों, परोपकार तथा दान पुण्य आदि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, और वह वहीं उनका श्रीगणेश भी कर देता है। अपने पुरखों तथा प्राचीन इतिहास की महत्ता का सच्चा आभास उसे मिलता है। इसके अतिरिक्त जल-वायु का परिवर्तन और नाना प्रकार के रंग-बिरंगी प्राकृतिक दृश्य—झरने, पर्वत, कंदरा, जंगल, पशु-पक्षी आदि—उसके स्वास्थ्य तथा मन पर अपना अमिट प्रभाव डालते हैं। ईश्वर की महत्ता एवं अपनी लघुता का भी अनुभव वह करता है, तथा अपने और विराट् प्रकृति के अटूट संबंध को समझकर 'ब्रह्मास्मि' महामंत्र का अर्थ समझ पाता है। ईश्वर की दी हुई आँखों का फल वह ईश्वर की कारीगरी और उसकी विचित्र लीला देखकर पाता है। उसकी निरीक्षण शक्ति, प्रकृति के ज्ञान तथा विज्ञान की उपयोगिता की भावना में वृद्धि होती है।

हमारे तीर्थ-स्थान प्रायः ऐसी ही प्रकृति की केलि-भूमि में स्थापित किए गए हैं। मनुष्य कूप-मंडूक नहीं रह जाता। 'A thing of beauty is a joy for ever' (एक सुंदर वस्तु सदा के लिये हर्ष का कारण होती है) की व्यापकता को अनुभव-प्राप्त यात्री समझ पाता है। हमारे धर्म-ग्रंथों में तो प्रत्येक हिंदू के लिये तीर्थ-यात्रा करने का आदेश है। तीर्थ-यात्रा के बिना जीवन नीरस, व्यर्थ, धर्म-रहित माना जाता है। तीर्थ यात्रा जीवन का एक कर्तव्य है, जिसका पालन कभी-न-कभी मनुष्य को अपने जीवन में करना पड़ता

है। किंतु जैसे प्रायः हर बात में सच्चे अर्थ को न समझकर हमने उसके अर्थ को बिगाड़ा तथा घसीटा-घसाटा है, वही बात तीर्थ-स्थान के विषय में भी है। जैसे तीर्थ-यात्रा अब धर्म-भीरु बूढ़ों और अशिक्षित तथा अर्ध-शिक्षित अधेड़ स्त्री-पुरुषों के ही हिस्से में हो। जब उनका अंत समय निकट आता है, तब वे अपना परलोक बनाने की चिंता में लगते हैं। तो प्रायः बूढ़े बूढ़ा ही क्यों तीर्थ-यात्रा करते हैं—युवक-युवतियाँ और बालक-बालिकाएँ क्यों नहीं? इसका भी एक कारण है। कारण स्पष्ट है—प्राचीन समय में यात्रा-मार्ग ठीक न थे, यात्रा के साधनों की भी कमी थी, चोर-डाकुओं तथा मार्ग के अन्य कष्टों का भी भय था। इसी से बृद्धजन जब यात्रा आरंभ करते थे, तो यही समझकर करते थे कि ईश्वर जाने अब लौटने की नौबत आए या न आए। यदि न भी लौटे, तो परलोक बनेगा—अंतिम समय तो है ही। परंतु अब रेल, मोटर, लॉरी, हवाई जहाज़, घोड़ा गाड़ी आदि सभी साधन पर्याप्त और सुलभ हैं—मार्ग में भी भय और कष्ट की आशंका नहीं—पक्की सड़कें, धर्मशालाएँ तथा अन्य सुविधाएँ हैं—ऐसी दशा में अब छोटे-बड़े सब आयु के स्त्री पुरुष आराम से यात्रा कर सकते हैं। किंतु हिंदू लकीर के फ़क़ीर तो होते ही हैं। पुरानी बातों में यदि बुराइयाँ भी हैं, तो भी उन्हें छोड़ना पसंद नहीं करते - चाहे अज्ञान के कारण ही वे ऐसा क्यों न करते हों।

परंतु अब तो तीर्थ-यात्रा बनाम सैर धीरे-धीरे सभी करने लगे हैं। विदेशी सभ्यता की विषैली वायु से प्रभावित हम भारतीय अपने पुरखों की मखौल उड़ाने में अपनी मर्दानगी ख़ूब समझने लगे हैं। दूसरे, एक बात और भी है। अनुभव-प्राप्त यात्री जानते हैं कि तीर्थ-स्थानों में कितना धर्म के नाम पर अधर्म और सत्यता के स्थान पर ढोंग होता है—कितने पाप, अनाचार और व्यभिचार के अड्डे

तीर्थ बन गए हैं। सीधे और धर्म-भीरु यात्री कैसे उल्टी छुरी से मूँड़े जाते हैं। न-जाने कितनी बार हमने पत्र-पत्रिकाओं में पंडों के अन्यायों को पढ़ा तथा यात्रियों की ज़बानी सुना है। प्राय: धन और कभी-कभी तो इज़्ज़त पर भी बन आई है। पंडे भूखे गिद्ध की तरह यात्रियों पर टूट पड़ते हैं। और, किस प्रकार अशांति को प्राप्त होकर, तीर्थ-स्थानों की लूट-कूट से काँपकर वहाँ न जाने के लिये वे कान पकड़ते हैं। उन्हें नास्तक में ऐसे स्थानों से घृणा हो जाती है। विशेषकर नवयुवकों में प्रतिक्रिया के भाव पैदा होना, तीर्थों के लिये, अस्वाभाविक नहीं है मैं स्वयं इस बात का साक्षी और भुक्तभोगी हूँ। विद्वानों, नेताओं और सरकार का ध्यान इस ओर गया है, और उन्होंने बहुत कुछ सुधार भी किए हैं। किंतु जब तक हमारा अज्ञान और अंध-विश्वास दूर न होगा, तब तक बहुत अधिक आशा इस क्षेत्र में नहीं की जा सकती।

एक विशेष बात हम यह देखेंगे कि प्राय: सभी तीर्थ-स्थान नदियों के किनारे हैं। प्राचीन काल में सबसे सुविधा-जनक मार्ग नदी ही था—इन्हीं के द्वारा व्यापार तथा आना-जाना रहता था। ऋषि-मुनि भी शांति और सुविधा के विचार से नदी-तटों पर ही अपनी कुटियाँ बनाते थे। नदी से जितने लाभ हो सकते हैं, वे सब नदी-तट पर बसनेवाले ही उपभोग कर सकते हैं। यही कारण है कि नदी-तट पर ही नगरों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हीं नदी-तटों पर एक निश्चित अवधि के बाद महापुरुषों के सम्मेलन होते रहते थे, और उसी अवसर पर व्यापारी एकत्र होकर उन पर्वों को 'मेला' का रूप दे देते थे, तथा साधारण जनता भी इनसे प्रत्येक प्रकार का लाभ उठाने के लिये एकत्र होती थी। इन महासम्मेलनों की सुचारु तथा सुव्यवस्थित रूप से निरंतरता क़ायम रखने के लिये हमारे महर्षियों ने धर्म के नाम पर बड़ा सुंदर उपाय

निकाला। कुंभ, कुंभी, कार्त्तिक-पूर्णमासी, सूर्य-चंद्र-ग्रहणादि और अनेक पर्वों पर नदी-स्नान तथा तीर्थ-दर्शन का आदर्श एवं महत्त्व रक्खा। और, इसी बहाने से लाखों यात्री, साधु-महात्मा और व्यापारी एकत्र होते और विचार-विनिमय तथा धर्म-चर्चा के सुयोग से लाभ उठाते थे। क्या ही अच्छा हो, यदि तीर्थ-यात्रा की सच्ची उपादेयता हम समझ जायँ।

आर्य-सभ्यता का प्रधान प्रचार-क्षेत्र आर्यावर्त रहा ही है, और इसमें भी प्रधान गंगा-यमुना की भूमि संयुक्त-प्रांत। भगवान् राम और कृष्ण का जन्म यहीं हुआ है, और गौतम बुद्ध आदि महर्षियों का प्रचार-केंद्र यहीं रहा है। दूध, घी, मक्खन की सदा यहाँ नदियाँ बही हैं, तथा आध्यात्मिक ज्योति का प्रसार यहाँ होता रहा है।

प्रत्येक तीर्थ की स्थापना का कुछ उद्देश्य-विशेष दृष्टि में रखकर ही हमारे पूर्वजों ने अपनी ज्ञान-बुद्धि का परिचय दिया है। तत्कालीन परिस्थितियों तथा वातावरण के वे ज्ञाता थे। जैसे बदरीनाथ की पर्वत-श्रेणियाँ भूगर्भ-शास्त्र का ज्ञान कराती हैं हिम, घाटी, जड़ी-बूटी, चट्टान, प्रपात, जल-वायु तथा पर्वतादि का ज्ञान हमें होता है। द्वारका में जलयान द्वारा यात्रा, समुद्र, टापू आदि का ज्ञान, जगन्नाथ-पुरी में समुद्र, समुद्र-भर की वनस्पति आदि तथा विभिन्न वस्तु-कला के नमूनों का ज्ञान, रामेश्वर में ईश्वरीय प्रकृति की अलौकिकता और मनुष्य की बुद्धि की परा काष्ठा का ज्ञान 'आदम का पुल' आदि देखकर होता है। भारतवर्ष के प्रति श्रद्धा, भक्ति तथा बंधुत्व का भाव यात्रियों के हृदय में भरते हैं। विद्यार्थियों को सैर-सपाटे से कार्यात्मक (Practical) ज्ञान होता है। प्राचीन समय में पैदल, नाव, बैल-गाड़ी, घोड़ा, ऊँट आदि पर ही यात्रा होती थी, जिसमें वस्तुओं को देखने-समझने का काफ़ी समय और अवकाश मिलता था। अब तो

मोटर, हवाई जहाज़ और रेल से हम एक स्थान से अन्य नियत स्थान पर फ़ुर्र से पहुँच जाते हैं—मार्ग के ज्ञान तथा दृश्यों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु पहले तीर्थ-यात्री को कष्ट-सहिष्णुता तथा घटनात्मक बातों (Adventures) की शिक्षा मिलती थी। कहीं ताँबे की खानें, कहीं लाहौरी नमक, कहीं मिट्टी का तेल, कहीं संग-मरमर, कहीं ज्वालामुखी (पंजाब की ज्वालादेवी) आदि यात्री देखते हैं। किंतु अपढ़, अंध-विश्वासी केवल मूर्ति के दर्शन करना ही अपना उद्देश्य समझते हैं, और दर्शन मात्र में अनेक यात्रा के कष्ट और मार्ग के ख़र्च भूल जाते हैं। इससे तो यही अच्छा है कि इस फ़ोटो-ग्राफ़ी और सिनेमा के ज़माने में वे उन मूर्तियों और मंदिरों के फ़ोटो ही देख लिया करें। ईश्वर हमें समझ दें।

प्रस्तुत पुस्तक में संयुक्त प्रांत के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों का वर्णन है। हरिद्वार, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ आदि उत्तराखंड के तीर्थ विंध्याचल, चित्रकूट आदि भी अत्यंत पवित्र तीर्थ-स्थान हैं, किंतु इनका वर्णन मेरी 'संयुक्त प्रांत की पहाड़ी यात्राएँ'-नामक पुस्तक में आ चुका है, इससे इसमें नहीं दिया। उक्त स्थानों के लिये मेरी 'पहाड़ी यात्राएँ' वाली पुस्तक पढ़ने का कष्ट कीजिए, शेष संयुक्त प्रांत के तीर्थ-स्थानों का वर्णन इस पुस्तक में है।

संयुक्त प्रांत के विषय में दो शब्द मुझे कहना है। संयुक्त प्रांत इन कमिश्नरियों में बाँटा गया है:—मेरठ, आगरा, इलाहाबाद, झाँसी, गोरखपुर, लखनऊ, फ़ैज़ाबाद, रुहेलखंड और कमायूँ। इन कमिश्नरियों के अंतर्गत ४८ ज़िले हैं। कहने का तात्पर्य यह कि संयुक्त प्रांत काफ़ी क्षेत्रफल में फैला हुआ है। प्रांत में उत्तरी भाग पहाड़ी, उसके नीचे तराई का भाग, उसके नीचे नदियों के मैदान और सबके नीचे दक्षिणी पहाड़ी भाग है। गंगा, रामगंगा, गोमती, घाघरा, काली, राप्ती, गंडक, कोसी, यमुना, चंबल, सोन आदि नदियाँ

यहाँ बहती हैं। इतने बड़े प्रांत में असंख्य गाँव, क़स्बे और बड़े नगर हैं। प्रत्येक स्थान में अनेक देव-मंदिर तथा पवित्र स्थान हैं, किंतु इस पुस्तक में केवल प्राचीन काल के और प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों का ही वर्णन है।

यदि इस पुस्तक को यात्रियों ने अपनाया, तो मैं अपना परम सौभाग्य समझूँगा। अंत में मैं अपने गुरुवर डॉक्टर दीनदयालजी गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०, रीडर—हिंदी-विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय का आभारी हूँ, जिन्होंने भूमिका लिखकर मेरा प्रोत्साहन किया है।

प्रेमी-कुटीर
पंजाबी टोला, लखनऊ
२४ । १ । १९४९

विनीत
लक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी'

संयुक्त प्रांत के तीर्थ-स्थान
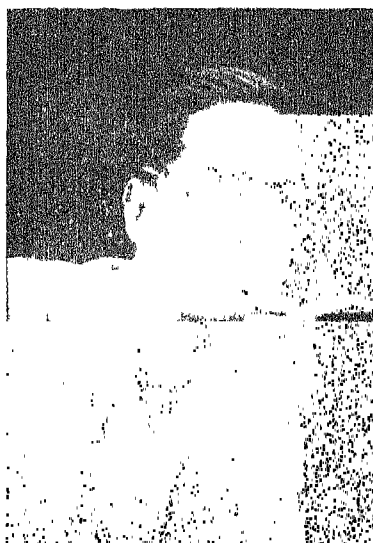
साहित्यरत्न श्रीलक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी' एम्० ए०

भूमिका

इस पुण्य देश भारतवर्ष में अनेक ऐसे प्राकृतिक दृश्य, ऐतिहासिक नगर और तीर्थ-स्थान हैं, जिन्हें भारतीय जनता हज़ारों वर्षों से पवित्र मानती आ रही है। सात सांप्रदायिक नगरियों और चार धाम की यात्रा करना धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु लोग तो पुण्य कार्य समझते ही हैं, धर्म में श्रद्धा न रखनेवाले व्यक्ति भी भारत के तीर्थ-नगरों के दर्शन की कामना करते हैं। अनेक स्थान ऐतिहासिक घटनाओं की स्मारकता का महत्त्व रखते हैं और अनेक भारतीय संस्कृति के निदर्शक कीर्ति-स्तंभ हैं। संयुक्त प्रांत प्राचीन 'मध्य देश' का एक बृहत् भूमि-भाग है, और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का एक मुख्य स्थान रहा है। पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वर्तमानकालिक औद्योगिक महत्ता के कारण बहुत-से स्थान यहाँ भी अपनी महत्ता रखते हैं। गंगा, यमुना आदि महान् नदियों से सिंचित और हरित यह प्रदेश भी दर्शनीय है।

तीर्थ-यात्रा और देश-पर्यटन का महत्त्व बहुत भारी है। तीर्थ-यात्रा से लौटा हुआ व्यक्ति अनुभवी, व्यापक दृष्टिमान् और कार्य-कुशल हो जाता है। लोग उसे पुण्य दृष्टि से देखते हैं। धार्मिक भावना के अतिरिक्त व्यापार और उद्योग-संबंधी अनुसंधान के लिये भी लोग देश-विदेश की यात्रा किया करते हैं। धनाढ्य तथा अवकाश-प्राप्त लोगों को तो भारत के पुण्य स्थानों को देखने का अवसर आसानी से मिल जाता है, परंतु साधारण स्थिति के जिज्ञासु व्यक्तियों के लिये देशाटन करना कठिन कार्य हो जाता है। इसलिये साधारण स्थिति की जनता की ज्ञान-वृद्धि, देश के प्रसिद्ध

स्थानों से उनका परिचय कराने और यात्रियों के पथ-प्रदर्शन के लिये यात्रा और पर्यटन के अनुभव-पूर्ण विवरण बड़े लाभकारी सिद्ध होते हैं। अंगरेज़ी-जैसी विदेशी भाषाओं में यात्रा-संबंधी साहित्य की प्रचुरता है, जिनमें ज्ञान वृद्धि की सामग्री के साथ साथ रसात्मकता भी है। परंतु भारतीय भाषाओं में इस प्रकार के साहित्य की कमी है, और हिंदी में तो ऐसे ग्रंथ और भी कम हैं।

श्रीलक्ष्मीनारायण टंडन ने प्रस्तुत पुस्तक में संयुक्त प्रांत के तीर्थ-स्थानों का विवरण दिया है, जो रोचक, सूचनात्मक और ज्ञानप्रद है। टंडनजी हिंदी के विद्वान्, लेखक तथा उदीयमान कवि हैं। वह मेरे शिष्य भी रहे हैं। इस पुस्तक में आए हुए विवरण और वर्णनों में उनके अनुभव की छाप है, जिसने उनमें सजीवता उत्पन्न कर दी है। मुझे विश्वास है, यह पुस्तक जनता को हितकारी सिद्ध होगी। साथ ही मुझे आशा है कि टंडनजी की लेखनी द्वारा और भी अधिक महत्त्व की पुस्तकें निकलेंगी।

(डॉक्टर) दीनदयालु गुप्त
(एम्० ए०, एल एल्० बी०, डी० लिट्०)
[रीडर—हिंदी, लखनऊ विश्वविद्यालय]

संयुक्त प्रांत के प्रमुख तीर्थ-स्थान तथा नदियाँ

काशी

काशी हिंदुस्थान का प्रधान तीर्थ है। हिंदुस्थान की सात पुरियों में इसका विशेष स्थान है, और भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में यहाँ के विश्वनाथजी का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। काशी बहुत पुराना नगर है। सत्ययुग में भी इसका अस्तित्व रहा है। महाराज हरिश्चंद्र यहीं अपने को बेचने आए थे। पुराणों तथा और धार्मिक पुस्तकों में काशी की बहुत प्रशंसा है। इसे शिवपुरी भी कहते हैं। कारण यह कि यह शिवजी के त्रिशूल पर बसी है। संसार में होते हुए भी काशी संसार से अपना भिन्न अस्तित्व रखती है। इसी से कहा जाता है कि जब संसार में प्रलय होती है, उस समय काशी में प्रलय नहीं होती। तभी तो कहते हैं—

तीन लोक में मथुरा न्यारी, तीन लोक से काशी,
जहाँ निवास करें नारायण अरु शंकर अविनाशी।

काशी का वर्णन पुराणों, वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रंथों में है। गौतम बुद्ध ने सारनाथ में उपदेश दिया था। स्वामी शंकराचार्यजी ने यहीं पंडितों से बहस करके सनातन-धर्म का फिर से प्रचार और बौद्ध-धर्म के सिद्धांतों का खंडन किया था।

कहते हैं, महाराजा हरिश्चंद्र के वरदान तो लेने के पश्चात् जितने जीवों की मृत्यु काशी में होती है, उन्हें मोक्ष हो जाती है—वे आवागमन के बंधन से छूट जाते हैं। अगनित बूढ़े स्त्री-पुरुष (खासकर बूढ़ी स्त्रियाँ) आपको विश्वनाथजी के पास भीख माँगते हुए मिलेंगे। उनमें ज्यादा-तर बंगाली स्त्रियाँ ही होती हैं, जो सिर्फ मरने ही के लिये काशी आती हैं। इन्हीं धर्म-भीरु विधवाओं को लक्ष्य करके किसी ने कहा है—

रॉंड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी, इनसे बचै, तो सेवै कासी।

इस कहावत से काशी की कुछ और विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है। एक तो यह कि यहाँ की ये भिक्षुक स्त्रियाँ यात्रियों की नाक में दम कर देती हैं। विश्वनाथजी से दर्शन करके निकलिए, तो देखिए, कितनी स्त्रियाँ आपको घेर लेती हैं, फिर बग़ैर उन्हें पाई-पैसा दिए आप आगे बढ़ तो जायँ। और, यदि आपने एक भिक्षुक को पैसा दे दिया, तो फिर देखिए, उनकी सेना कैसा आपको घेरकर दुखी कर देती है!

दूसरी विशेषता यहाँ के साँड़ हैं। जैसे अयोध्या, मथुरा और चित्रकूट में बंदरों की सेना है, वैसे ही काशी में साँड़ों की सेना दिखाई देगी। स्थान-स्थान पर, गली-गली में आपको साँड़ मस्ती से घूमते हुए दिखाई देंगे। ये आपसे बोलेंगे नहीं, पर इनसे डरना ही उचित है। ये अक्सर आपस में

लड़ जाते हैं। लड़ते समय इनका उत्साह और वीरता देखने योग्य होती है। लोग आनंद लेने के लिये इनके सिरों पर ठंडा पानी डाल देते हैं। कहते हैं, ऐसा करने से ये और भी ज़ोरों से लड़ने लगते हैं। साँड़ों की मस्ती तो प्रसिद्ध ही है, इसलिये खाने-पीनेवाली वस्तुओं के दूकानदारों को भी इनसे बहुत सावधान रहना पड़ता है। ज़ाब्ता फ़ौजदारी का कोई भी क़ानून इनके लिये लागू नहीं। कल्पना कीजिए, बनारस की प्रसिद्ध सँकरी गलियों में, जिनमें कभी-कभी दो आदमी भी एक साथ नहीं चल सकते, साँड़ों का आज़ादी से घूमना। काशी की गलियों के बारे में भी दो शब्द कहना उचित होगा। यहाँ की गलियों की चौड़ाई का वर्णन तो कर ही चुका हूँ, अतः उनका ज़्यादा गंदा रहना भी ठीक ही है। काशी की खास आबादी गंगा के किनारे ही वरुणा से अस्सी तक है, अतः मकान बहुत गिचपिच बने हैं। गलियों में ताज़ी हवा और सूर्य की किरणें शायद उस समय आती हों, जब कोई मकान खुदता हो, नहीं तो किसी तरह भी हवा और धूप उनमें नहीं जा सकती। गलियाँ बहुत हैं। काशी की गलियाँ क्या हैं, भूलभुलैयाँ हैं। मैं बहुत बार काशी हो आया हूँ, लेकिन खास-खास गलियों को छोड़कर मुझे भी सब गलियाँ याद नहीं। किसी नए आदमी को आप अकेले छोड़ दीजिए, शायद ही वह उन गलियों से पार पा सके, और अपने जानेवाले स्थान तक पहुँच सके।

तीसरी विशेषता यहाँ के साधु हैं, जो हजारों की तादाद में हैं। सब बने हुए ठग और ढोंगी हैं। सच्चे साधु तो नगर के बीच में रहेंगे ही क्यों। ये साधु, अगर उन्हें मौक़ा मिले तो, आपको दिन-दहाड़े धोका दे सकते हैं। इनमें कुछ अच्छे भी हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम होगी।

चौथी विशेषता यहाँ की सीढ़ियाँ और घाट हैं। मैंने पहले ही बताया है कि काशी गंगा के किनारे बसी है। किनारे से बहुत ऊँचे पर बस्ती है, पर है बस्ती बिलकुल किनारे ही। आप किसी भी स्थान से ५-६ मिनट में गंगाजी पहुँच जायँगे। गंगाजी के किनारे चारों ओर सैकड़ों सीढ़ियाँ हैं, जिन पर चढ़कर ही आप मकानों तक पहुँच सकते हैं। यहाँ के उन मकानों से, जो गंगा के पास हैं, गंगाजी का दृश्य देखा जा सकता है, जो बहुत सुंदर है। यहाँ के सब घाट पक्के हैं।

पहले मैं काशी के प्रसिद्ध घाटों और गंगा-तट का वर्णन करूँगा। वरुणा-घाट से असी-घाट तक लगभग ५१ विशाल घाट हैं। घाटों की शोभा राजघाट के पुल या माधवराय के धरहरे से देखी जा सकती है। राजघाट से काशी के घाटों की शोभा देखिए, वे अर्ध-चंद्राकार क़रीब २-३ मील तक चले गए हैं। काशी इतनी सुंदर मालूम होती है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। इसी से 'अवध की शाम और काशी की सुबह' हिंदुस्थान में प्रसिद्ध है। रात को जब सर्च-लाइट

घाट के किनारे जल जाती है, पुल पर से देखने से ऐसा लगता है, जैसे काशी में दिवाली मनाई जा रही है। घाटों का दृश्य नाव पर से देखने में भी अपूर्व मालूम होता है। वरुणा से असी तक गंगाजी का बहाव तेज नहीं है। वरुणा
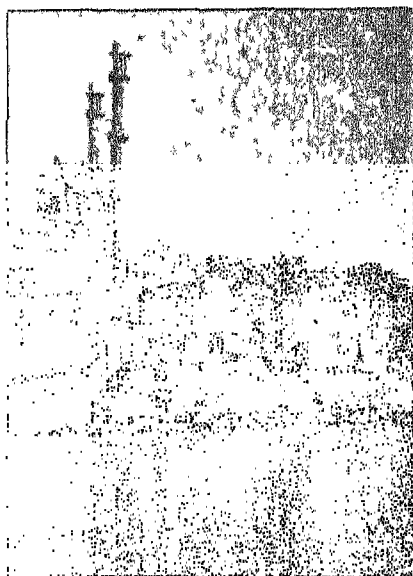
माधवराय का धरहरा

के पहले और असी के बाद गंगा बड़ी तेजी से बहती हैं। ऐसा होने का कारण लोग यह बताते हैं कि गंगा के नीचे की जमीन की प्राकृतिक बनावट कुछ ऐसी ऊँची-नीची है कि नदी का बहाव थमा-सा रहता है। गंगा यहाँ गहरी भी बहुत

हैं। गरमियों में १०-११ बजे रात तक लोग जल-विहार और नौका-विहार किया करते हैं। सर्च-लाइटों के कारण नदी पर उजाला-ही-उजाला होता है। और, अगर चाँदनी रात हुई, तो फिर क्या कहना। लोग बीचोबीच में अपनी नाव या बजरा छोड़ देते हैं—बहाव न होने के कारण वह बहती नहीं, बल्कि अपनी जगह पर रुकी-सी रहती है। लोग नाव पर शिव-बूटी (भंग) छानते, (इसका यहाँ बड़ा रिवाज है।) अलापते या प्राकृतिक सुंदरता देखते हैं। 'बोटिंग' का आनंद जितना काशी में है, उतना मथुरा में भी नहीं। बड़े-बड़े आदमियों के पास अपनी नावें होती हैं। यों भी नावों का किराया बहुत कम होता है

यहाँ के ख़ास घाट ये हैं—वरुणा-संगम-घाट, राजघाट, प्रह्लाद-घाट, नया घाट, त्रिलोचन-घाट, महथा-घाट, गाय-घाट, लाल घाट, शीतला-घाट, राजमंदिर-घाट (यहाँ हनुमान्-मंदिर है।) ब्रह्मा-घाट, दुर्गा-घाट, पंचगंगा-घाट, माधवराय - घाट, लक्ष्मणबाला - घाट, राम - घाट (यहाँ गणेशजी का मंदिर है।), अग्नीश्वर-घाट, भोंसला-घाट, गंगा-महल-घाट (यहाँ राधा-कृष्ण का मंदिर है।), संकटा-घाट (यहाँ संकटाजी और विंध्याचल का मंदिर है।) सिंधिया-घाट, मणिकर्णिका-घाट, चिता-घाट, राजराजेश्वरी-घाट, ललिता-घाट, मीर-घाट, मान-मंदिर-घाट, चौका-घाट दशाश्वमेध-घाट, अहल्याबाई-घाट, जैन-घाट, राणा-महल

घाट, चौसठ-घाट, पांडे-घाट, मुंशी-घाट, सर्वेश्वर-घाट, राजा-घाट, नारद-घाट, मानसरोवर-घाट, सोमेश्वर-घाट, चौकी-घाट, केदार-घाट (यहाँ केदार-कुंड और महादेव-मंदिर है।), लली-घाट, श्मशान-घाट या हरिश्चंद्र-घाट, हनुमान्-घाट (यहाँ हनुमान्‌जी का मंदिर और पास ही महाप्रभुजी की बैठक है।), दंडी-घाट, शिवाला-घाट, बच्छराज-घाट, जानकी-घाट, तुलसी-घाट, बाजीराव-घाट, राला मिश्र-घाट, असी-घाट।

अब मैं खास-खास घाटों का वर्णन करता हूँ—

(१) वरुणा-संगम-घाट—यहाँ वरुणा नाम की एक छोटी नदी गंगा से आकर मिली है। पास ही वशिष्ठेश्वर और कृतीश्वर महादेव, विष्णुपादोदक-तीर्थ और श्वेत-द्वीप-तीर्थ हैं।

(२) राजघाट—यह घाट पक्का नहीं है। यहाँ से पीपे का पुल शुरू होता है। यहाँ आदिकेशव का मंदिर है।

(३) प्रह्लाद-घाट—मुसलमानों से सताए जाने पर कुछ दिन यहाँ भी तुलसीदासजी रहे हैं, लेकिन थोड़े दिनों बाद यहाँ से भी चले गए। घाट पर प्रह्लादेश्वर का मंदिर है।

(४) त्रिलोचन-घाट—यहाँ शिवजी का मंदिर और बहुत-सी देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इस घाट के नामकरण की एक पौराणिक कथा है। कहते हैं, यहाँ भगवान् विष्णु ने ९९९ कमल के फूलों से शिवजी की पूजा की।

एक कमल कम होने के कारण उन्होंने अपना एक 'लोचन' (आँख) शिवजी को चढ़ा दिया। शिवजी ने उस नेत्र को अपने मस्तक पर धारण करके अंगीकार किया। तभी से यह त्रिलोचन-घाट कहलाया।

(५) गाय-घाट—इस ओर खत्रियों की बस्ती ज़्यादा है। पास ही एक शिव-मंदिर है। एक पत्थर की गाय भी घाट पर बनी है।

(६) ब्रह्मा-घाट—इसके पास ब्रह्मेश्वर शिव और दत्ता-त्रयजी के मंदिर हैं।

(७) दुर्गा-घाट—इसके पास ही दुर्गाजी का मंदिर है। थोड़ी दूर पर विट्ठोबा के मंदिर हैं—एक छोटी मूर्ति और एक बड़ी मूर्ति।

(८-९) पंचगंगा-घाट तथा माधवराय-घाट—पंचगंगा महाराजा मानसिंह का बनवाया कहा जाता है। यह पक्का और सुंदर बना है। पास ही दीप-स्तंभ है, जहाँ दिए जलाए जाते हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने यहीं अपनी प्रसिद्ध गंगा-लहरी बनाई थी। यहाँ कई छोटे-छोटे मंदिर हैं (जैसे बालाजी का मंदिर)। माधवराय का धरहरा भी यहीं है। नाम ही से प्रकट है कि हिंदू-मंदिर था, पर औरंगजेब ने इसे तुड़वाकर मसजिद बनवाई। इसके मीनार पर चढ़कर देखने से काशी-नगरी, घाटों और गंगाजी का दृश्य बहुत सुंदर मालूम पड़ता है। इसके सामने बेनीमाधव का मंदिर है।

(१०) भोंसला-घाट—इस घाट पर एक पक्का पत्थर का ऊँचा महल-सा बना है। इसके अंदर श्रीलक्ष्मीनारायणजी का मंदिर भी है।

(११) सिंधिया-घाट—यह घाट अब लाखों रुपए लगवाकर पक्का करवा दिया गया है। यह घाट बहुत सुंदर है। यहाँ आत्मावीरेश्वर का मंदिर और उसके सामने बृहस्पतीश्वर का मंदिर है। यहाँ से थोड़ी दूर पर पीतांबरा-देवी का मंदिर है।

(१२) मणिकर्णिका-घाट—(यहाँ महाराज अलवर और
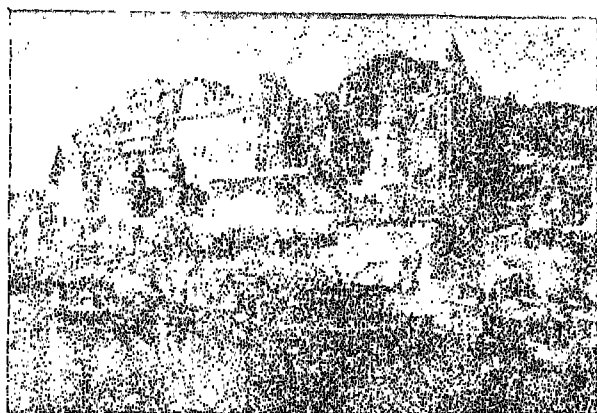
मणिकर्णिका घाट का एक दृश्य

महाराज अमेठी का मंदिर है। ऊपर चढ़कर दाऊजी और नृसिंहजी का मंदिर है। सिद्ध बिनायक गणेश का मंदिर

अलवर-मंदिर के सामने है।) यहाँ नहाने का बड़ा माहात्म्य है, और बड़ी चहल-पहल रहती है। घाट का दृश्य अत्यंत सुंदर है। कहीं लोग स्नान कर रहे हैं, कहीं चंदन लगा रहे हैं, कहीं पूजा कर रहे हैं। सबसे सुंदर दृश्य तो उन धर्मध्वजों का होता है, जो आसन जमाए माला फेरते हैं। कहीं छतरियाँ और कहीं मढ़ियों का जमघट है, जिनके नीचे तख्त बिछे हैं। उन पर बैठे हुए यात्रियों से पंडे मंत्र पढ़कर पुजा रहे हैं। फूल बेचनेवाले फूल-पत्ती बेच रहे हैं। संक्षेप में एक अपूर्व दृश्य वहाँ होता है। मणिकर्णिका-कुंड पर सूर्य-खंभ है। ऐसा कहा जाता है कि उस खंभ से सदा पानी निकला करता है। यह खंभ बिलकुल ठोस है। इससे निकला जल ही किरणा-नदी कहलाता है। भगवान् जानें, यह दंत-कथा कहाँ तक सच है।

यह यहाँ का परम प्रसिद्ध घाट है, जो अहल्याबाई का बनवाया हुआ है। घाट के ऊपर प्रसिद्ध मणिकर्णिका-कुंड है, जिसके चारो ओर लोहे का कटहरा है। बहुत-सी सीढ़ियाँ उतरकर जल तक पहुँचते हैं। पानी कमर-कमर तक और गंदा रहता है, यद्यपि इस जल का संबंध गंगाजी से रहता है। बरसात में बाढ़ आने पर जब यह कुंड बालू से भर जाता है, तो पंडे यहाँ की बालू फिकवाकर साफ़ करवाते हैं। इसके नामकरण की भी कथा बड़ी रोचक है। कहते हैं, जब विष्णुजी की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उन्हें बरदान देनेवाले

थे, तब उनके कुंडल जल में गिर गए। विष्णुजी ने अपने चक्र से उन्हें खोज निकाला। इसी से इसका नाम मणिकर्णिका पड़ा। इसके पास ही कई सुंदर मंदिर हैं, जिनमें अहल्याबाई का बनवाया तारकेश्वर शिव का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। मणिकर्णिका से सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाने पर सिद्धेश्वरी-मुहल्ला पड़ता है, जहाँ सिद्धेश्वरीदेवी का मंदिर है।

(१३) चिता-घाट—इसका सब घाटों के बीचोबीच में होना, खासकर ऐसे स्थान में, जहाँ बहुत यात्री नहाते हों, स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत बुरा है। पर हज़ारों वर्षों से होती आई रीति का विरोध करने की शक्ति किसमें है? यहाँ एक और बुराई है। मुर्दा जब प्रायः जल चुकता है, तो उसके कुछ बचे हुए भाग को जल में बहा देते हैं। इस घाट के पास ही मिट्टी के बर्तनों की दूकान है। यहीं से नहाकर लोग विश्वनाथजी के दर्शन करने जाते हैं। इसके पास ही जनाना-घाट है।

(१४) ललिता-घाट—इसके पास ललितादेवी का मंदिर और कई शिव-मंदिर हैं। यहाँ गोविंद का संस्कृत-विद्यालय है। यहीं नैपाली मंदिर है। यह शिव-मंदिर बहुत सुंदर है। इस मंदिर में लकड़ी पर बना हुआ काम बहुत बढ़िया है। जगन्नाथपुरी की तरह इसमें भी आसनों के चित्र लकड़ी पर हैं।

(१५) मान-मंदिर-घाट—इसके पास ही महाराज

जयसिंह की बनवाई वेधशाला और मंदिर है। इन्हीं की बनवाई हुई वेधशालाएँ दिल्ली और जयपुर में भी हैं। यह छोटी है, पर ज्योतिषियों के बड़े मतलब की है। सूर्य तथा नक्षत्रों की चाल आदि जानने के लिये यहाँ बहुत-से लोहे या पत्थर के यंत्र हैं। यहाँ से गंगा का दृश्य बहुत सुंदर लगता है।

(१६) दशाश्वमेध-घाट—यह काशी का बहुत प्रसिद्ध
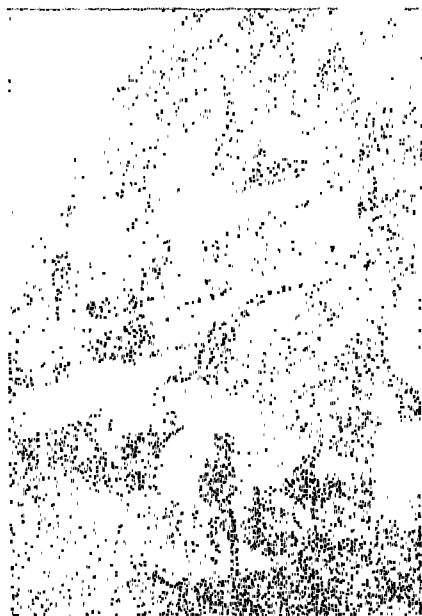
दशाश्वमेध-घाट

घाट है। यह दशाश्वमेध-बाज़ार के पास है। यहाँ बंगाली

बहुत हैं। सबसे ज्यादा भीड़ यहीं होती है। शाम को यहाँ जाइए। आप देखेंगे, जगह-जगह पर कथा हो रही है, सैकड़ों आदमी बैठे एक साथ कीर्तन कर रहे हैं। बहुत लोग घाट पर टहल रहे या सीढ़ी पर बैठे सूर्यास्त का दृश्य देख रहे हैं। कहीं दिए जलाकर गंगाजी में बहाए जा रहे हैं, कहीं फूल। नावें लोगों से खचाखच भरी हुई इस पार-उस पार आ-जा रही या इधर-उधर भागी जा रही हैं। सबके चेहरे पर प्रसन्नता और विनोद की झलक है; एक मस्ती का भाव है। धर्म और सैर-सपाटा का क्षेत्र दशाश्वमेध अपनी अपूर्व शोभा दिखा रहा है। कहीं लोग नहा रहे हैं, कहीं लड़के ऊपर से फाँद-फाँदकर तैर रहे हैं। स्त्री-पुरुष और मित्रगण अपनी-अपनी टोली बनाए अपने-अपने विनोद में व्यस्त हैं। साधु लक्कड़ जलाए बैठे हैं, खोंचेवाले टहल-टहलकर आवाजें लगा रहे हैं, दूकानदार अपनी-अपनी चाट की दूकान लगाए बैठे हैं। हरिद्वार की 'हरि की पैड़ी' का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। यहाँ ब्रह्माजी ने दस अश्वमेध-यज्ञ किए थे, इसी से इसका नाम दशाश्वमेध पड़ा। पास ही काशी का खास बाजार है। घाट पर छोटे-छोटे कई मंदिर हैं। पास ही बंगाली-टोला है। यहाँ की बंगाली मिठाई प्रसिद्ध है।

(१७) अहल्याबाई-घाट—यह घाट अहल्याबाई का बनवाया हुआ है। यहाँ अहल्याबाई का मंदिर है।

(१८) केदार-घाट—इस पर कई शिव-मंदिर और गौरी-कुंड हैं। जैन-घाट पर जैन-मंदिर और जैन-विद्यालय हैं।

(१९) हरिश्चंद्र घाट—महाराज हरिश्चंद्र यहीं डोम के नौकर होकर रहते थे। कहते हैं, मुर्दा जलाने के लिये यहाँ इतना अधिक कर डोमों को देना पड़ता है कि केवल धनी मनुष्य ही यहाँ अपना मुर्दा जला सकते हैं। यहाँ हरिश्चंद्र-महादेव का मंदिर है।

(२०) शिवाला-घाट—यहाँ स्वप्नेश्वर शिव, स्वप्नेश्वरीदेवी और हयग्रीव भगवान् के मंदिर तथा हयग्रीव-कुंड हैं। यहाँ बहुत सुंदर महल आदि बने हैं।

(२१) जानकी-घाट—यहाँ जानकी-मंदिर आदि कई मंदिर हैं, और कई महल-ऐसे बने हैं। निकट ही भदैनी पंपिंग-स्टेशन है, जहाँ गंगाजी का पानी साफ़ करके नगर-भर को पहुँचाया जाता है।

(२२) तुलसी-घाट—यहीं तुलसीदासजी रहते थे, और यहीं उन्होंने अपने पवित्र ग्रंथों की रचना की थी। पास ही तुलसीदासजी का मंदिर है। मंदिर छोटा, लेकिन अच्छा है। छोटे-छोटे कमरे हैं, जिन पर सीढ़ी चढ़कर जाना पड़ता है। तुलसीदासजी की चरण-पादुका (खड़ाऊँ) और उनकी कई चीज़ें (जैसे बीसा-यंत्र) यहाँ सुरक्षित रक्खी हैं। यहीं तुलसीदासजी की स्थापित की हुई हनुमान्‌जी की मूर्ति है। पास ही कपिल मुनि की मूर्ति है। घाट बहुत पुराना है। इसके

पास ही लोलार्कादित्य, लोलार्केश्वर के मंदिर और लोलार्क-कुंड हैं। कहते हैं, कुष्ठ-रोग से पीड़ित लोगों को यहाँ स्नान करने से कुष्ठ-रोग से छुटकारा मिलता है।

(२३) असी-घाट—यहाँ असी-नदी का गंगा से संगम है। तुलसीदासजी की मृत्यु के बारे में यहाँ एक दोहा लिखा है, जो बहुत प्रसिद्ध है—

संवत सोरह से असी, असी-गंग के तीर,
सावन सुकला सत्तमी तुलसी तज्यो सरीर।

यहाँ जैन-मंदिर भी हैं। घाट कच्चा-सा है। घाटों का सिलसिला यहीं टूटता है, और यहीं से गंगा का बहाव तेज़ होता है। यहाँ जगन्नाथजी और नृसिंहजी के मंदिर हैं।

संक्षेप में कहना यही है कि यदि काशी से घाटों की शोभा निकाल दीजिए, तो काशी में रह ही क्या जाता है। सबेरे और शाम राजघाट से असी-घाट तक घूमते चले जाइए, देखिए, कितना स्वर्गीय आनंद आता है। यहाँ बाग़-बग़ीचे भी बहुत हैं। यहाँ के लोगों को भाँग-बूटी का बड़ा शौक़ है, और प्रायः हरएक बड़े आदमी का निजी बाग़-बग़ीचा होता है, जहाँ शाम को मित्रों का जमघट होता है।

अब मैं काशी की देखने योग्य चीज़ों का वर्णन करता हूँ। काशी धर्म-क्षेत्र है। गली-गली में दो-दो क़दम पर आपको मंदिर मिलेंगे। ख़ासकर शिव-मंदिर, क्योंकि यह शिवपुरी तो है ही। मणिकर्णिका-घाट से आप विश्वनाथजी के

मंदिर की ओर चलिए। मार्ग में सैकड़ों छोटे-मोटे मंदिर और मूर्तियाँ पड़ेंगी। एक मंदिर पत्थर का बना हुआ दाहनी ओर मार्ग में पड़ता है। इस पर पत्थर का काम देखने योग्य है। विश्वनाथजी यहाँ के मुख्य देवता हैं। चारो ओर लाल पत्थर की दीवार बनी है। मंदिर में चार द्वार हैं, जिन पर पीतल-जड़े किवाड़े हैं। मंदिर के फ़र्श में रुपए जड़े हैं। मंदिर का गुंबद सोने के पत्र से मढ़ा है, जो महाराणा रणजीतसिंह ने जड़वाया था। मंडप और देवालय के चारो ओर सहन है, जिसमें देवी-देवताओं की बहुत मूर्तियाँ हैं। दालान से मिला एक कमरा है, उसी में एक कोने में महादेवजी हैं। महादेवजी नीचे पर हैं। वह सदा भक्तों के चढ़ाए हुए जल और फूलों से डूबे रहते हैं। रात को जब विश्वनाथजी की आरती होती है, तब बड़ा अच्छा लगता है। फ़र्श सदा पानी से गीला रहता है।

मंदिर के पीछे ज्ञान-वापी है। कहते हैं, जब औरंगज़ेब ने विश्वनाथजी के मंदिर को तुड़वाया, तो महादेवजी भागकर कुएँ में फाँद पड़े। इस कुएँ के मुँह पर लोहे की जाली लगी है, जिस पर भक्त लोग फूल, पानी या पैसे चढ़ाते हैं। इससे थोड़ी दूर पर सामने ही औरंगज़ेब की मसजिद है, जो उसने विश्वनाथमूर्ति के मंदिर को तोड़कर बनवाई थी। इसके सामने सात फ़ीट ऊँचा बड़ा नंदी है, जो महाराजा नैपाल का दिया हुआ है। पास ही एक चबूतरे पर

गौरीशंकर की मूर्ति और पश्चिम की ओर शिव की कचहरी है।

विश्वनाथजी से चलिए, तो पहले शनिश्चर देवता का मंदिर है। पास ही महावीरजी और अक्षयवट हैं। इसके आगे बढ़ने पर अन्नपूर्णा का मंदिर है। मंदिर शिखरदार और २५० वर्ष का पुराना है। यह पत्थर का मंदिर है, और बहुत अच्छा बना है। चारो ओर अन्य देवी-देवताओं के मंदिर हैं। मंदिर की दालान में और मंदिर के चारो ओर की दालानों में सैकड़ों पंडित बैठे दुर्गा-पाठ किया करते हैं। इसी मंदिर से मिला हुआ लक्ष्मीनारायणजी खत्री का बनवाया बहुत सुंदर मंदिर है। यह संगमरमर का बना है। इसमें कालीजी, कृष्णजी, राम-सीता और उनके भाइयों, शिव और गंगाजी, गणेशजी आदि की अलग-अलग विशाल मूर्तियाँ हैं। यह मंदिर है तो १०-१२ वर्ष पहले ही का बना, पर काशी का यह बहुत सुंदर मंदिर माना जाता है। यहाँ जाकर उठने का मन नहीं चाहता।

यहाँ से आगे बढ़ने पर फाटक के पास ढुंढिराज गणेश की और पास ही दंडपाणि की मूर्ति है। यहाँ से कुछ दूर पर आदिविश्वेश्वर का मंदिर है, और यहाँ से थोड़ी दूर पर वह स्थान है, जहाँ लोग करवट लेते थे। 'जायसी' ने इसका संकेत-मात्र किया है। यहाँ लोग अपने को आरी से जीवित चिरवा लेते थे। उनका विश्वास था कि

यहाँ करवट या करवत लेने से मनुष्य को मोक्ष हो जाती है। यह 'काशी-करवट' कहलाता है। यहाँ शिवजी की मूर्ति बहुत नीचे गड्ढे में है। यह कुआँ-सा है। ऊपर से यात्री पैसे और कपूर आदि चढ़ाते हैं।

भैरवनाथजी का मंदिर—यह भैरवनाथ-मुहल्ले में है।

गोपाल-मंदिर—वैष्णव-संप्रदाय का यह मंदिर चौखंभा-मुहल्ले में है। इसके पास ही मुकुंदराय का, वैष्णव-संप्रदाय का, मंदिर है।

रणछोड़जी का मंदिर—वैष्णव-संप्रदाय का यह मंदिर चौखंभा में है।

बड़े महाराजजी का मंदिर—वैष्णव-संप्रदाय का मंदिर है।

बलदेवजी का मंदिर—वैष्णव-संप्रदाय का मंदिर है।

दाऊजी का मंदिर—वैष्णव-संप्रदाय का मंदिर है।

गोरखनाथजी का मंदिर—यह गोरख-टीले पर मंदाकिनी-मुहल्ले में है।

राम-मंदिर—यह भी बहुत सुंदर है।

दुर्गाजी का मंदिर—यह भी सुंदर मंदिर है। मंदिर से मिला हुआ एक बहुत मनोहर, पक्का और लंबा-चौड़ा दुर्गा-कुंड है। इस मंदिर में बकरों का बलिदान होता है। मुझे भी एक बकरे की बलि देखने का दुर्भाग्य हुआ। एक लकड़ी ऐसी है, जिस पर बकरे का सिर रखने की जगह है। उस पर

बकरे का सिर रखकर वहाँ का पंडा या भगवान् जाने, कौन एक मनुष्य था। उसने पहले तलवार तोली, फिर एक ही वार में बकरे का सिर काट डाला। थोड़ी देर धड़ तड़पता रहा, फिर ठंडा पड़ गया। खून का पनाला बह चला। धर्म के नाम पर अधर्म करनेवाले पाखंडियों को भगवान् सुबुद्धि दें। उस दृश्य को सोचकर आज भी रोएँ खड़े हो जाते हैं।

वागीश्वरीदेवी का मंदिर—इसके पास एक तालाब है, जो नाग-कुआँ कहलाता है।

लाट भैरव—इस मंदिर के पास ही कपाल-मोचन-कुंड है।

खास-खास मंदिरों का वर्णन मैंने कर दिया। यों तो गली-गली में, पग-पग पर मंदिर हैं। एक स्थान 'भवकूप'-नामक कुआँ है, जिसमें यदि अपनी परछाँईं दिखाई दे, तो समझें एक वर्ष तक मृत्यु नहीं हो सकती। एक और धन्वंतरि का कुआँ है, जिसका जल पीने से सब रोग दूर हो जाते हैं। काशी मंदिरों का नगर है। कबीर-चौरे के पास 'आज'-कार्यालय है, इसी के सामने राधास्वामी का मंदिर है। मंदिर में अनेक सुंदर तैल-चित्र भी टँगे हैं। इसके आगे सुंदर बगीचा है। विश्वविद्यालय के पास (लंका के पास) संकट-मोचन हनुमान् का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। चारो ओर भारी बाग है। यह बहुत सुंदर स्थान है। यहाँ की देखने योग्य चीजें ये हैं—

(१) भारत-माता का मंदिर—यह मंदिर देश-पूज्य शिवप्रसादजी गुप्त ने कई लाख रुपया लगाकर बनवाया है।

मंदिर में हिंदुस्थान का सुंदर संगमरमर का नक्शा बना है, जिसमें ज़मीन की ऊँचाई-निचाई दिखाई गई है। मंदिर के

भारतमाता का मंदिर

उद्घाटन के लिये स्वयं महात्मा गांधी आए थे। देश-भर के नेता उस दिन काशी में इकट्ठा हुए थे। भाग्य-वश मैं भी उस दिन काशी में था, और वह अपूर्व समारोह देखने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हरएक धर्म की पवित्र बातें,

आयतें, मंत्र आदि यहाँ पढ़े गए थे. नेताओं की स्पीचें हुई थीं। काशी जानेवाले को यह स्थान अवश्य देखना चाहिए। मंदिर के दूसरे खंड में दीवारों पर हिंदुस्थान के कई नक़्शे और हिंदी, प्राकृत तथा पाली आदि कई भाषाएँ लिखी हैं। इसके निकट ही एक नवीन पुस्तकालय का उद्घाटन पूज्य मालवीयजी ने किया है।

(२) बाबू शिवप्रसादजी गुप्त की कोठी—यह नगवा-मुहल्ले में है। बहुत सुंदर और लंबी-चौड़ी है। अक्सर कांग्रेसी नेता, जो भी काशी जाते हैं, यहीं ठहरते हैं।

(३) राजा मोतीचंद की कोठी और झील—कोठी बहुत सुंदर है। इसके अंदर ग्रीन-हाउस भी है। कोठी के कमरे भी देखने को मिल जाते हैं, जो बहुत सजे हुए हैं। अंदर सुंदर बग़ीचा भी है। झील बहुत सुंदर बनी है, पर पानी की कमी है।

(४) पुराने मिंट हाउस के सामने काशी-नरेश की नंदेश्वर नाम की कोठी नंदेश्वर-मुहल्ले में है। यहाँ नंदेश्वरी-देवी का स्थान है।

(५) कबीर-चौरा—इस मंदिर में कबीर की गद्दी है। उनके चरण-चिह्न, टोपी और तसवीर यहाँ हैं। मंदिर से मिला हुआ एक बाग़ भी है।

(६) अढ़ाई-कँगूरा मसजिद।

(७) काशी की सबसे प्रसिद्ध वस्तु हिंदू-विश्वविद्यालय

है, जो महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय की घोर तपस्या का फल है। यह सन् १९१६ में बना था। इसके भवन बहुत सुंदर हैं। इनमें ३४ डिपार्टमेंट (विभाग) हैं। इस वर्ष (१९४० में) कॉमर्स-विभाग भी खुल गया है। १९३९-४० में एक कॉलेज ऑफ् टेक्नॉलोजी भी खुला था। सिरेमिक्स, ग्लास टेक्नॉलोजी, एलेक्ट्रिकल ऐंड मेकनिकल इंजीनियरिंग कॉलेज, माइनिंग मेटलरजी डिपार्टमेंट, एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री, साइंस, आर्ट, ला, बी० टी० (ट्रेनिंग कॉलेज), आयुर्वेदिक कॉलेज, ओरियंटल कॉलेज, हिंदू-स्कूल (एनीबेसेंट रोड पर) आदि मुख्य डिपार्टमेंटों के कॉलेज इसमें हैं। यहाँ की लाइब्रेरी भी देखने योग्य है। उसमें बहुत पुरानी हाथ की लिखी पुस्तकें और पुराने समय की चित्रकारी के अनेक नमूने हैं। विद्यालय में एक नहर भी है। नहर के चारों ओर बिजली लगी है। यहाँ 'ट्यूब-वेल सिस्टम' है। एक लक्ष्मीनारायणजी का मंदिर भी बना है। कैलास-मंदिर की भी नींव पड़ गई है। इसमें एक 'डेयरी' भी है। इमारत बनाने के लिये रेलिंग्स, चूना, गुम्मा आदि चीज़ें भी यहीं बनती हैं। बिजली के लिये यहीं एलेक्ट्रिक पावर-हाउस है। यहाँ अनेक होस्टल हैं—लिम्डी-होस्टल, राजपूताना-होस्टल, धनराजगिरि-होस्टल (तीनो इंजीनियरिंग होस्टल हैं), ब्रोचा-होस्टल, बिड़ला-होस्टल (इन दोनो होस्टलों में साइंस और

आर्ट के विद्यार्थी रहते हैं), रुइया-होस्टल (प्रायः इसमें संस्कृत तथा आयुर्वेद के विद्यार्थी रहते हैं)। एक नया होस्टल और गवर्नमेंट की ओर से बना है, जिसमें एरोप्लेन की मशीनरी के विषय के विद्यार्थी रहते हैं। इन होस्टलों के अलावा यहाँ 'लॉजेज' हैं, जिनमें विद्यार्थी रहते हैं। विद्यालय में प्रायः साढ़े पाँच हजार विद्यार्थी हैं। औरतों के लिये 'वीमेंस कॉलेज' और लेडीज-होस्टल है। सर सुंदर-लाल-हॉस्पिटल भी बहुत प्रसिद्ध है। विश्वविद्यालय का क्षेत्र क़रीब ६ वर्ग मील होगा। यहाँ गन्ने, पपीते, फलों और नाज आदि की खेती भी खूब होती है। जितनी चीजें यहाँ हैं, वे गोल बनी हैं। विद्यालय में पचासों छोटी-बड़ी पक्की सड़कें हैं। यहाँ का कनवोकेशन पंडाल भी बहुत अच्छा है। एक विशेषता यह है कि हरएक कमरे के सामने कोई-न-कोई सिद्धांत अँगरेजी, हिंदी या संस्कृत में लिखा रहता है। यहाँ प्रोफ़ेसरों के क्वार्टर भी बहुत सुंदर बने हैं। खेलने के मैदान भी पचासों की संख्या में हैं। विश्वविद्यालय का मुख्य प्रवेश-द्वार बहुत सुंदर है। यों तो यहाँ की सभी इमारतें बड़ी शानदार हैं। यहाँ की इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री-विभाग की बनाई हुई चीजें—जैसे साबुन, तेल, क्रीम, मोम-बत्ती, पाउडर, सेंट, खिलौने आदि—हिंदुस्थान-भर के बाजारों में बिकती हैं। यहाँ दसवें दर्जे का 'एडमिशन एग्जामिनेशन' भी होता है, जिसका पास करना स्त्रियों के लिये बहुत

आसान है। दो शब्द यहाँ के विद्यार्थियों के बारे में भी कहना है। यहाँ के विद्यार्थी प्रायः बड़ी सादगी से रहते हैं। हिंदुस्थान के कोने-कोने से यहाँ विद्यार्थी पढ़ने आते हैं। यहाँ स्त्रियों के लिये विशेष रूप से प्रबंध है। विद्यालय के तीन-चार 'रेस्टुरेंट' हैं, और होस्टल में 'मेस-सिस्टम' है।

काशी सदा से ही भारतीय संस्कृति, सभ्यता और शिक्षा का केंद्र रही है। स्वामी रामानंद, कबीर, तुलसी आदि यहीं रहते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्रजी का मकान अब भी उनकी याद दिलाता है। राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिंद', पंडित अंबिकादत्त व्यास, पं० छोटूराम तिवारी आदि यहीं के रहनेवाले थे। साहित्यिकों को भारतेंदु के घर के दर्शन जरूर करने चाहिए। स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद'जी ने भी इस भूमि का महत्त्व बढ़ाया है। डॉक्टर भगवानदास आदि अनेक धुरंधर विद्वान् काशी का गौरव बढ़ा रहे हैं। राय कृष्णदास, स्वर्गीय बाबू श्यामसुंदरदास, 'हरिऔध'जी और स्वर्गीय रामचंद्र शुक्ल, सबने इस पवित्र भूमि की शोभा बढ़ाई है। संस्कृत-भाषा का तो काशी सदा से ही केंद्र है। संस्कृत के धुरंधर विद्वान् और वेदों-पुराणों के जानकार जितने यहाँ हैं, उतने हिंदुस्थान के किसी भी नगर में न होंगे। श्रीनारायण भट्ट, श्रीशंकर भट्ट, नीलकंठ भट्ट, कमलाकर भट्ट, लक्ष्मीधर सूरि, भट्टोजी दीक्षित, नागोजी भट्ट, मुकुंदलाल, रघुनाथ, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मनीदेव,

पंडित बापूदेव शास्त्री, पंडित राम मिश्र शास्त्री, पंडित सुधाकर द्विवेदी, पंडित गंगाधर शास्त्री, पंडित दामोदर शास्त्री और पंडित शिवकुमार शास्त्री आदि प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् यहाँ हुए हैं। यों तो यहाँ बहुत-से कॉलेज और हाईस्कूल हैं, पर कींस कॉलेज बहुत प्रसिद्ध है। हरिश्चंद्र-हाईस्कूल बड़े गणेशजी पर है, और भारतेंदुजी की यादगार है। काशी-विद्यापीठ यहाँ की प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था है। इसमें हिंदी ही शिक्षा का माध्यम है। इन अँगरेजी स्कूलों आदि के अलावा केवल संस्कृत पढ़ाने के लिये यहाँ अनेक पाठशालाएँ हैं।

इसके अलावा यहाँ कुछ और भी शिक्षा-संबंधी संस्थाएँ हैं। यहाँ की सबसे प्रसिद्ध संस्था नागरी-प्रचारिणी-सभा है। यह सभा बाबू श्यामसुंदरदास आदि के परिश्रम का फल है। हिंदी-भाषा और साहित्य के प्रचार और उन्नति के लिये इस सभा ने बहुत काम किया है। अनेक उत्तम ग्रंथों का इसने प्रकाशन किया है। हिंदी-शब्द-सागर नाम का एक भारी कोष यहाँ से निकल चुका है। यहाँ एक सुंदर पुस्तकालय भी है। पुस्तकालय के ऊपरी भाग में 'हिंदी-भारत-कला-भवन', हिंदी के पुराने हस्त-लिखित ग्रंथ, चित्र और कतिपय मूर्तियाँ संगृहीत हैं। इसका श्रेय कला-प्रवीण बाबू राधाकृष्ण को है।

श्रीभारत-धर्म-महामंडल हिंदू-धर्म के प्रचार के लिये एक महत्त्व-पूर्ण संस्था है।

कारमाईकेल-लाइब्रेरी—यह चौक में बहुत प्रसिद्ध लाइ-ब्रेरी है।

काशी के प्रसिद्ध मुहल्ले ठठेरी बाजार, चौखंभा-बाजार, चौक, कचौड़ीवाली गली, दाल-मंडी, कुंजगली, ज्ञानवापी, ब्रह्मपुरी, भैरवनाथ, गोलघर, अर्दली बाजार, अलाईपुरा, सुनारपुर, औरंगाबाद, चेतगंज, मदनपुरा आदि हैं। यहाँ का खास बाजार चौक है, जो गोदौलिया से शुरू होकर टाउन-हॉल तक जाता है। काशी के प्रसिद्ध सिनेमा-हाउस और हरएक तरह की चीजों की दूकानें इस पर हैं। टाउन-हॉल के सामने एक सुंदर पार्क है, जिसमें एक तालाब भी है।

चौक के बीच में सड़क के किनारे एक सुंदर मंदिर कोठी के नीचे भाग में है। यहाँ बड़ा सुंदर कीर्तन होता है।

काशी में आठ स्टेशन हैं—(१) बनारस-कैंट, (२) लोहता, (३) काशी या राजघाट, (४) मुगलसराय और (५) शिवपुर। ये ई० आई० आर० के स्टेशन हैं, और बी० एन० डबल्यू० के (१) मड़वाडीह, (२) सारनाथ और (३) बनारस सिटी स्टेशन हैं। यहाँ धर्मात्मा धनियों ने अनेक धर्मशालाएँ बनवा दी हैं, जिनमें यात्री सुविधा-पूर्वक ठहर सकते हैं।

काशी व्यापार का भी केंद्र है। यहाँ के रेशमी कपड़े, लकड़ी के खिलौने, पीतल के बर्तन और सुरती (तंबाकू, खास-

कर पत्ती की) प्रसिद्ध हैं। यहाँ गोटे-पट्ठे का काम बहुत अच्छा होता है। बनारसी साड़ियाँ और दुपट्टे तथा पीतल की सुंदर मूर्तियाँ तो दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं। चाँदी का काम भी यहाँ का अच्छा होता है। बनारसी पान और लँगड़ा आम भी यहाँ के प्रसिद्ध हैं। मगही पान यहाँ का बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ पान में इतना पतला कत्था लगाते हैं कि अगर कोई यह बात नहीं जानता, तो पान खाते समय अपना कपड़ा ज़रूर खराब कर लेगा। यहाँ एक प्रकार का पान तँबोली लगाते हैं, जिसे पत्ती कहते हैं। इसकी तारीफ़ यह है कि यह मुँह में अपने आप रक्खे-रक्खे घुल जाता है। यहाँ की दुपलिया टोपी भी प्रसिद्ध है। बनारस की टोपी लखनऊ की दुपल्ली टोपी की बनावट से अलग होती है। यहाँ के गहरे-बाज़* इक्के भी प्रसिद्ध हैं। बनारसी इक्के पर बैठकर शाम को घूमने निकल जाइए—देखिए, क्या आनंद आता है! एक बात मुझे यहाँ की और पसंद आई। यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि यहाँ वास्तव में मालूम होता है कि हिंदू-धर्म प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान है। यहाँ बड़े-बड़े आदमी और पढ़े-लिखे मनुष्य भी आपको अँगौछा पहने गंगाजी नहाने जाते दिखाई देंगे। धर्म ने जैसे आडंबर को जीत लिया हो।

---

* गहरेबाज़ी से मतलब है बहुत तेज़ इक्का भगाना। यहाँ के इक्के खुले होते हैं।

कुछ लोग काशी की पंचकोसी परिक्रमा भी करते हैं। मैंने तो परिक्रमा की नहीं, लेकिन पूछने पर पता चला कि यह लगभग ५० मील की है। मणिकर्णिका घाट से शुरू होती है, और यहीं खत्म होती है। यह परिक्रमा पाँच दिन में पूरी होती है। मार्ग में कंडवा, रामेश्वर, भीमचंडी देवी का मंदिर, पंचपांडव-तालाब, वरुणा और गंगा का संगम, कपिल-सरोवर और अन्य मंदिर पड़ते हैं।

इतिहास की दृष्टि से काशी घटना-पूर्ण स्थान है। महमूद ग़ज़नी, मुहम्मद ग़ोरी और औरंगजेब आदि मुसलमान बादशाहों ने न-जाने कितने मंदिर और मठ तोड़े, लूट-मार की, और मंदिरों के टूटे हुए सामान से मसजिदें बनवाईं। वारेन हेस्टिंग्स को भी यहीं से अपने प्राण लेकर चुनारगढ़ भागना पड़ा था।

यहाँ से कुछ दूर, गंगाजी के दूसरी ओर दाहने तट पर, रामनगर है। पुल से क़रीब ४-५ मील होगा। यहाँ की यात्रा बहुत कष्ट-दायक रही। एक बार हम लोग काशी में एक बारात में आए थे—हमारे एक मित्र का विवाह था। १०-१२ आदमी हम लोगों के साथ और थे। गाय-घाट से नाव करके हम लोग उस पार गए। वहाँ नित्य-कर्म से निबटकर मणिकर्णिका-घाट आए। सोचा, थोड़ी और सैर की जाय। फिर नाव पर बैठे, दशाश्वमेध तक आए, और फिर नाववाला असी-घाट तक ले आया। नाववाला भी चतुर था—वह 'थोड़ी दूर है,

थोड़ी दूर है' कहकर नाव बढ़ाता रहा। कोई एक घंटे में नाव रामनगर-घाट पर लगी।

गंगा के किनारे ही नगर का भारी क़िला है। वहाँ उतरकर ज्यों ही मैं साबुन लगाने बैठा, वैसे एक आदमी ने मुझे ज़ोरों से डाँटा। उसने कहा—"महल के नीचे साबुन लगाते हो।"

मैं सकपका गया। मैंने कहा—"हाँ भाई, लगा तो रहा हूँ। पर क्या यह पाप है?"

उसने कहा—"महल के नीचे साबुन लगाना मना है। राजा साहब के महल के नीचे साबुन!"

उसे ताज्जुब था कि यह कैसा यात्री है, जो यह भी नहीं जानता। मुझे चट ख़याल आया कि अरे, यह रियासत है। देशी राज्यों के नियम दूसरे और अजीब होते हैं। ख़ैर साहब! नहाकर क़िले में गए। धूप तेज़ थी, इसलिये छाता लगा लिया। एक और डाँट पड़ी—"क़िले के अंदर छाता बंद करो।" अब की छाता बंद करते देर नहीं लगी। भाग्य-वश राजा साहब कहीं बाहर जा रहे थे। उनके दर्शन हुए। टोपी उतारनी पड़ी। राजा साहब बहुत सादी पोशाक में थे। राजा साहब का महल देखा। महल के कुछ कमरों की दीवारों पर पूरी रामायण की घटनाओं आदि के चित्र बने हुए हैं। एक और हॉल देखा, जहाँ अनेक मारे हुए शेरों की खालें बिछी थीं। हॉल खूब सजा था। संगमरमर और

हाथी-दाँत की बनी कई चीजें भी वहाँ बड़ी अच्छी रक्खी थीं। आदमी के बराबर चित्र भी लगे थे। क़िले के ऊपर से गंगाजी का दृश्य बहुत सुंदर है। यहाँ क़िले पर वेद-व्यासजी का मंदिर है। दूर से वह स्थान भी देखा, जहाँ राजा साहब दरबार करते थे। यह सब देख-भालकर हम लोग क़िले के बाहर निकले। थोड़ी दूर बढ़ने पर यहाँ का अजायब-घर देखा। अजायब-घर क्या था, दो-तीन सीखचे-दार कमरे थे, जिनमें दो शेर बंद थे। वहाँ से बाहर आए, तो एक आदमी से पूछा—"भाई, यहाँ क्या चीज़ देखनेवाली है?" उसने कहा—"कोई मील-भर पर देवीजी का मंदिर है। यह सीधी सड़क है। थोड़ा आगे जाकर मुड़ जाना।" हम लोगों ने सोचा, चलो मंदिर देख आवें, तब खायँ-पिएँ, नहीं तो धूप बढ़ जायगी। ख़ैर, चले। गरमी के दिन थे। बहुत कड़ी धूप पड़ रही थी। दुर्भाग्य-वश हममें से कुछ नंगे पैर थे, क्योंकि रामनगर आने की बात सोचकर तो हम लोग घर से चले न थे। एक सनक थी, सब रामनगर चले गए—और वह भी मेरे कारण। मील-भर चल चुकने के बाद एक सज्जन से देवीजी के मंदिर की दूरी पूछी, तो उन्होंने कहा—"एक मील है।" थोड़ा चलने पर एक और से पूछा, तो फिर वही "एक मील है, सामने ही है।" ख़ैर, राम-राम करके दुर्गादेवीजी के मंदिर पहुँचे। मंदिर बहुत सुंदर है। पत्थर की नक़्क़ाशी देखने योग्य है। मंदिर का

बग़ीचा (रामबाग़) भी अच्छा है। मंदिर के पास ही एक बड़ा भारी पक्का, गहरा तालाब है (दुर्गा-कुंड)। चारों ओर पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। तालाब से मिला हुआ राजा साहब का बाग़ है। बाग़ में पौधे विचित्र प्रकार से कटे हुए हैं—कोई मोर, कोई शेर और कोई हिरन के रूप के। बाग़ बहुत सुंदर है। बाग़ के बीच में बैठने के लिये एक पक्का चबूतरा बना है। तालाब की ओर पक्का महल-सा और बारादरी बनी है। इन सबको देख चुके, और कुछ सुस्ता चुके, तो चलने का प्रश्न आया। हमारे कुछ साथियों ने तो चलने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा—"दोपहर को जान देने न जायँगे—शाम को चलेंगे।" पर मेरे यह समझाने पर कि "भाई! कुछ लोग जो क़िले के नीचे बैठे हैं, जिन्होंने कहा है—'हम लोग रास्ता देखेंगे—आप लोग घूम आइए, हम लोग न जायँगे।' उन लोगों को धूप में मारना कहाँ तक उचित होगा।" अंत में सब उठे। जो नंगे पैर थे, उन्हें पहनने को कभी किसी ने जूता दे दिया, कभी किसी ने, और थोड़ी दूर ख़ुद नंगे पैर चला। विश्वास कीजिए, नंगे पैर होने पर हम लोग 'हाई जंप' करते हुए दौड़ रहे थे। 'पक्की एसफ़ाल्ट की सड़क और बहुत दूर-दूर पर पेड़। किसी तरह जीवित क़िले तक पहुँच सके। भोजन किया और फिर क़िले के अंदर से होकर गंगा के किनारे पहुँचे। घाट क्या था, जलती हुई

भट्ठा थी। हमारे वे साथी, जो हम लोगों की राह देख रहे थे, इतनी देर हो जाने के कारण बहुत ऊब चुके थे। अगर हम लोगों को पाँच मिनट की और देर हो जाती, तो शायद नाव छूट चुकी होती। खैर। हम लोग नाव पर बैठकर चले। गरमी बड़ी थी—सूर्य की तेज़ किरणें ऊपर से सिर पर पड़ रही थीं, और नीचे गंगाजी का पानी था अदहन। मैंने एक और बेवकूफ़ी की—गंगाजी में अपना छाता भिगो लिया, और गीला छाता खोल लिया। 'चौबे छब्बे होने गए थे, दुबे ही रह गए।' गरम-गरम पानी की बूँदें जब ऊपर पड़ती थीं, तो मेरी 'भई गति साँप-छछूँदर केरी'—न छाता खोलते ही बनता था, न बंद करते। गरमी में साधुओं को पंचाग्नि तापने में क्या आनंद आता होगा, इसका कुछ अनुभव हुआ।

मैं तो समझा था, सही-सलामत घर तक पहुँचना संभव न होगा। कहीं मगहर में किसी को प्राण न छोड़ने पड़ें। कबीर तो महात्मा थे। वह कह सकते थे, 'जो कबिरा कासी मरै, तो रामै कौन निहोर?' और भाई! उनके मरने पर भगवान् को उनका सिर अपनी जाँघ पर रखना पड़ा, पर हम लोगों के लिये भगवान् भी क्यों परिश्रम करेंगे। खैर, सही-सलामत घर पहुँचे। खूब स्वागत हुआ—खासकर मेरा कि "यही कमबख़्त है—सबको ले गया।" अगर हम लोग घंटे-दो घंटे और न आते, तो शायद पुलिस

की शरण लेनी पड़ती। बारातियों का घबराना स्वाभाविक ही था। ऐसी रामनगर की यात्रा रही। बसंत-वीमेंस कॉलेज और मांटेसरी स्कूल भी वरुणा-संगम के उत्तर-पश्चिम पर हैं। यदि इक्के से राजघाट से रामनगर जाओ, तो यह संस्था मार्ग में पड़ती है।

रामनगर का आनंद सबसे अच्छा दशहरे में होता है। यहाँ की रामलीला बहुत प्रसिद्ध है। इसमें बड़ी भीड़ होती है। दशहरा काशी का बहुत प्रसिद्ध है। काशी के भरत-मिलाप में इतनी भीड़ होती है कि उस मार्ग और उस मार्ग के मकानों में तिल धरने को जगह नहीं होती, जिधर से भरत-मिलाप का जलूस निकलता है। लोग दो घंटे बैठने के लिये किराए पर जमीन ले लेते हैं। मुझे यहाँ का भरत-मिलाप देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आगे-आगे काशी-नरेश हाथी पर चलते हैं। भगवान् का रथ काशी के अहीर अपनी वर्दी पहनकर उठाते हैं। यह उन्हीं का जन्म-सिद्ध अधिकार है। बड़ा मेला होता है। दशहरे के दिन बंगाली लोग जब गंगाजी में सरस्वती की मूर्ति विसर्जन करते हैं, तब भी एक मनोहर दृश्य होता है। नाव पर मूर्ति रक्खी जाती है। काशी की नक्काशी तो प्रसिद्ध है ही। यहाँ की ठुमरी और कजली भी प्रसिद्ध हैं। नावों पर गैस की रोशनी होती है, गाना-बजाना होता है, पूजा होती है। खूब घुमाकर मूर्ति गंगाजी में विसर्जन की जाती है।

दशाश्वमेध-घाट पर बहुत भीड़ होती है। नावों का किराया बहुत बढ़ जाता है।

दशहरे के अलावा रामनवमी, शिवरात्रि और बुढ़वा मंगल का मेला भी यहाँ का बहुत प्रसिद्ध है। काशी की शिवरात्रि भी प्रसिद्ध है। भीड़ की उस दिन बात न पूछिए। अपने बच्चे चिरंजीव श्रीनलिनीनंदन के साथ मुझे विश्वनाथ-जी के दर्शन करने का सौभाग्य उस दिन प्राप्त हुआ। सूर्य और चंद्र-ग्रहण पर भी बहुत यात्री स्नान करने के लिये आते हैं।

सारनाथ

सारंगनाथ, ऋषिपत्तन, इसिपत्तन या सारनाथ काशी से चार मील उत्तर की ओर है। यहाँ जाने के लिये यात्री इक्के, ताँगे, मोटर या रेल की शरण लेते हैं। जो लोग सड़क से सवारी पर जाना चाहते हैं, उन्हें पंचगंगा-घाट और औरंगज़ेब की मसजिद के पास से होकर जाना पड़ता है। क्वींस कॉलेज से जो मार्ग गया है, वह बिलकुल सीधा है। ईसाइयों का बड़ा गिरजाघर, वरुणा-नदी का पुल, चारों ओर बाग़, कोठियाँ और खेत आदि मार्ग में पड़ते हैं। सारनाथ के पास पहुँचने पर सड़क के दोनो ओर बड़हर के पेड़ बहुत हैं, जिनसे उस स्थान की शोभा बहुत अधिक बढ़ जाती है। बी० एन्० डबल्यू० रेलवे पर 'सारनाथ' नाम का एक स्टेशन है। यहाँ से एक सीधी सड़क सारनाथ के अजायबघर और प्राचीन भग्नावशेष की ओर जाती है। स्टेशन से लगभग एक मील होगी।

हम लोग दोपहर को रेल द्वारा सारनाथ पहुँचे। पक्की सड़क के दोनो ओर आम के वृक्ष लगे हैं। रास्ते में दो-एक पक्के कुएँ भी हैं। गर्मी की ऋतु थी। पृथ्वी तप रही थी, और हम लोग पसीने से लथपथ आगे बढ़ रहे थे। पहले एक

गाँव-सा पड़ता है। वहाँ दो-एक ऐसी घटनाएँ हो गईं, जिन्हें हम लोग जीवन-पर्यंत नहीं भूल सकते। हम लोग प्यासे तो थे ही। अँगरेजियत में लोटा-डोर रखना अनावश्यक होता है, अतः हम लोग एक कुएँ पर खड़े हो गए, यह देखने को कि यहाँ कहीं लोटा-डोर तो नहीं है। पास ही एक किसान भाई खड़े थे। उन्होंने हम लोगों को देखकर कहा—"आप लोग क्या चाहते हैं?—पानी।" हम लोगों के "हाँ" कहने पर उन्होंने अपनी लड़की से कहा—"जाओ, गगरा-रस्सी ले आओ, और पानी भरकर पिला दो।" कन्या १४-१५ साल की थी—स्वास्थ्य, सुंदरता और सादगी का उदाहरण। अपनी आयु के अनुसार उसमें चंचलता थी, और उत्सुकता तथा जिज्ञासा की दृष्टि से वह हम लोगों को देख रही थी। उसके अंग सुडौल और मुख की आकृति आकर्षक थी। उसमें संकोच और स्वाभाविक लज्जा थी। न-जाने क्यों उस स्वर्गीय प्रतिभा को भूलने की इच्छा नहीं होती। वह गगरा लाई, और पानी भरने जा रही थी, किंतु किसी भी सहृदय की गैरत यह गवारा नहीं करती कि ऐसी कोमल, पवित्र और भोली-भाली युवती से यह परिश्रम करवाता, और आप बैठा रहता। उसके 'ना-ना' करने पर भी मैंने उससे गगरा ले लिया। वह चली गई, और किवाड़े के पीछे से हम लोगों को देखती रही—कदाचित् इसलिये कि हम लोग शहर के थे। किंतु उसकी दृष्टि में शोहदापन न था। पानी पीकर उसके पिताजी

से बातें करते रहे। हमारे गाँवों में अब भी सच्ची भारतीयता के दर्शन हो सकते हैं।

हम लोगों के साथ एक १०-१२ वर्ष का बच्चा था। उसे एक स्थान पर बिठाकर हम लोग तार फाँदकर आगे बढ़े। पहले बुद्ध-लाइब्रेरी पड़ी, फिर एक हॉस्पिटल। आगे चलकर बुद्धजी का एक मंदिर पड़ा। यह बौद्ध-सुसाइटी द्वारा बना। इसके निर्माण में विशेष दान देनेवालों के नाम पत्थर पर खुदे हैं। यह देखकर दुःख हुआ कि दाताओं में भारतीयों की संख्या नगण्य है। धन्य है जापान, चीन और बर्मा के दानवीरों को, जिन्होंने भारतीय सभ्यता का हित किया।

यह बहुत ही सुंदर है। फाटक पर एक बहुत बड़ा घंटा लगा है। जूते उतारकर भीतर जाना पड़ता है। बिलकुल सामने एक ऊँचे चबूतरे पर एक सिंहासन है, और उस पर गौतम बुद्ध की मूर्ति। इधर-उधर की दीवारों पर सुंदर चित्रकारी है। ये चित्र बुद्धजी के जीवन की मुख्य घटनाओं के दिग्दर्शक हैं। इनको एक जापानी चित्रकार ने बनाया है, परंतु ऐसा मालूम होता है, जैसे यह किसी भारतीय कलाकार की कारीगरी है। बुद्धजी के जन्म से लेकर मृत्यु-समय तक के दृश्य अंकित हैं। इन चित्रों में अजंता तथा एलोरा की गुफाओं की दीवारों पर बने हुए चित्रों की नक़ल करने का प्रयत्न किया गया है।

मंदिर छोटा है, किंतु वहाँ इतनी अधिक शांति है, मानो

स्वयं स्वर्ग की देवियाँ इसकी शांति की रक्षा कर रही हैं। यह स्थान स्वच्छ भी बहुत है। मंदिर में एक पुजारी रहते हैं, जो बुद्ध के संबंध में पुस्तकें या मंदिर आदि के फ़ोटो बेचते हैं। मंदिर से थोड़ी दूर पर एक वृक्ष लगाया गया है। कहते हैं, 'बोधि-वृक्ष' की ही एक डाली से यह पेड़ उगा है।

यहाँ सारनाथ का संक्षिप्त इतिहास लिखना अप्रासंगिक न होगा। प्रायः २५३० वर्ष से ऊपर की बात है, जब गयाजी में बोध प्राप्त करने के पश्चात् यहीं महात्मा गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था, जिसे इतिहास 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' कहता है। ५२८ ई० पूर्व की यह घटना है। इसी की स्मृति में गुप्त-काल में ११० फ़ीट ऊँचा धम्मेख-स्तूप बना, जो आज भी साक्षी-स्वरूप है। उस समय सारनाथ 'मृगदाव' था। इसके बाद लगभग ३०० वर्ष तक इतिहास सारनाथ के लिये मौन है। ई० के २५० वर्ष पूर्व अशोक की आज्ञा से मौर्य-कला का दिग्दर्शक पत्थर का स्तंभ खड़ा किया गया, जिस पर ब्राह्मी-भाषा में उपदेश खुदा है। ई० की तीसरी सदी पूर्व का बना 'धर्मराजिका-स्तूप' का भग्नावशेष अपनी मोटी ईंटों तथा पत्थर की बनी वेदिका या रेलिंग के लिये अब भी सुरक्षित है। ई० की दूसरी सदी पूर्व की भी टूटी रेलिंग और वेदिका-स्तंभ भी हैं। ये शुंग-काल के हैं। मौर्य-काल में सारनाथ की विशेष प्रसिद्धि रही। उसके बाद शुंगों के काल में कला-संबंधी ख्याति विशेष न बढ़ी, परंतु

कुषाणों के समय में इसकी प्रसिद्धि फिर कुछ बढ़ी। उस समय की बुद्ध-मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं। यह बात ई० की पहली

धम्मेख-स्तूप

और दूसरी सदी की है। भारशिव नागों के समय में सारनाथ की कोई उन्नति-अवनति न हुई, पर गुप्त-काल में सारनाथ ने फिर उन्नति की। छठी शताब्दी में हूणों ने सारनाथ की बहुत कुछ सत्ता नष्ट कर दी। मौखरी और वर्धनों के राज्य में सारनाथ ने फिर कुछ उन्नति की। सातवीं शताब्दी

के हुएनसांग ने इसकी तारीफ़ की है, और आठवीं सदी के ईत्सिंग ने भी। दसवीं सदी के पालों के समय भी यह प्रसिद्ध रहा। मुहम्मद ग़ज़नी ने आग लगाकर तथा मूर्तियाँ तोड़कर इसकी शोभा नाश की। त्रिपुरी के कालचुरी राजाओं ने इसके पुनरुद्धार का कुछ प्रयत्न किया। बारहवीं सदी में कन्नौज के राजा गोविंदचंद्र के समय में सद्धर्मचक्र जिन-विहार बनवाया गया, पर शीघ्र ही क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने फिर इसे तोड़ा-फोड़ा। सर विलियम जोंस और रॉयल एशियाटिक सुसाइटी के जन्मदाता तथा भारतीय पुरातत्त्व-प्रेमी सर जॉन मार्शल ने सारनाथ के लिये बहुत कुछ किया। राजा चेतसिंह के मंत्री जगतसिंह ने धर्मराजिका-स्तूप की नींव खोदकर काशी में जगतगंज बसवाया, और अपनी पाप-वृत्ति का परिचय दिया। सन् १९३१ में बौद्धों ने फिर सारनाथ को जीवन-दान दिया। यह है संक्षिप्त परिचय।

हाँ, तो बौद्ध-मंदिर के निकट एक बौद्ध-धर्मशाला है, जो आधुनिक ढंग से बहुत सुंदर बनी है। यह धर्मशाला दानवीर बिड़ला की दानशीलता का फल है। इसका निर्माण प्राचीन बौद्ध-विहार के ढंग पर किया गया है। आर्य-धर्म-संघ-धर्मशाला नाम है।

हाल ही में यहाँ बुद्ध-संस्थाओं की ओर से सार्वजनिक पुस्तकालय और वाचनालय भी खोला गया है। यहाँ देश तथा विदेश के कितने ही समाचार-पत्रों के दर्शन हुए।

एक चीनी धर्मशाला भी है। यहाँ बौद्ध विद्यालय और महाबोधि-अस्पताल भी है।

इसके निकट ही एक स्कूल है। यहाँ एक ओर एक जैन-मंदिर है, जहाँ कोई भी हिंदू जा सकता है। यहाँ भी बड़ी शांति थी। इसे देखकर निकट ही धम्मेख-स्तूप, मूलगंध कुटी और विहार नाम का नया विहार देखा। पास

मूलगंध कुटी और विहार

ही प्राचीन सारनाथ के खँडहर देखे। इन्हीं खँडहरों में एक स्थान पर अशोक का एक स्तंभ भी है, जिस पर एक लेख ब्राह्मी-लिपि और पाली-भाषा में खुदा हुआ है। यह स्तंभ बिजली गिरने से अब दो खंड हो गया है। ये खँडहर प्राचीन बौद्ध-विहारों के हैं, जहाँ बौद्ध-भिक्षु

रहते और शिक्षा ग्रहण करते थे। उनके रहने के कमरे, जिनमें उनके बैठने और पुस्तकें तथा दिया रखने आदि के स्थान बने हुए हैं, अब तक दिखाई पड़ते हैं। इन खँडहरों में एक बड़ी विचित्र चीज़ देखने में आई, और वह है एक गुप्त मार्ग। यह मार्ग ऊपर से ढका हुआ प्रायः ६ फ़ीट ऊँचा और ३ फ़ीट चौड़ा एक सिरे से दूसरे सिरे तक चला गया है। इसके अतिरिक्त पानी के निकास के लिये नालियाँ भी बनी हैं। इन खँडहरों से थोड़ी दूर दाहनी ओर एक और दर्शनीय वस्तु है। एक छोटा-सा चौकोर गढ़ा बना हुआ है—उसी में अशोक की एक लाट गड़ी हुई है, जिसका वर्णन ऊपर हुआ है। इन्हीं धर्म-लेखों को खुदवाकर अशोक ने धर्म-विजय प्राप्त की थी, और भिक्षु-सम्राट कहलाया। ऐसे स्तंभ प्रायः भारतवर्ष के हर कोने में पाए गए हैं। यहाँ का स्तंभ बलुए पत्थर का है, जो चुनार के पहाड़ों से निकलता है। इसमें पॉलिश की हुई है, जो प्रायः २२०० वर्ष से अधिक व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक वैसी ही बनी है। मौर्य-काल की इस विशेषता का अभी तक इंजीनियर नहीं समझ पाए हैं।

खँडहरों को हम निम्न-लिखित भागों में, अपने घूमने की सुविधा के लिये, विभाजित कर सकते हैं (जैसा तख़्तियों में लिखा है, उसकी नक़ल)—

(अ) मोनेस्ट्री नंबर १, २, ३, ४, ५, ६ आदि । (लकड़ी की तख्तियों पर नंबर लिखे हैं)

(आ) आर्कानिकल इसकल्चर शेड (में पत्थर की मूर्तियाँ)

(इ) कामीमियोरेटिव स्तूपा विद् अमरैला पार्ट सराउन्डेड बाई मैनोलीथिक

(ई) मौर्यन रेलिंग (मेन श्राइन)

(उ) अशोक कालम

(ऊ) श्राइन विद् सबटरेनियन पैसेज

(ए) धर्मचक्र-जिन-विहार ऑफ् क्वीन किमार देवी आदि ।

किसी समय सारनाथ काफी उन्नति पर रहा होगा । कहते हैं, अपने प्रथम और मुख्य पाँचों शिष्यों को गौतम बुद्ध ने यहीं उपदेश दिया था । बहुत काल तक भगवान् बुद्ध ने यहाँ निवास किया है । यहाँ बौद्धों के बहुत-से विहार आदि थे । अतः बौद्धों का तो यह तीर्थ-स्थान हो गया है । यहाँ बौद्धों की अनेक धर्म-संस्थाएँ—जैसे मंदिर, विहार, स्तूप, धर्मशालाएँ, पुस्तकालय, स्कूल आदि - रही हैं, और अब भी उनकी स्मृति-स्वरूप खँडहर हैं । मौर्य और गुप्त राजाओं ने यहाँ अनेक भवनों आदि का निर्माण किया था । उस समय सारनाथ अपने यश और सौंदर्य की पराकाष्ठा पर रहा होगा । उस समय शिल्प-कला की कितनी

उन्नति हो चुकी होगी, यह खँडहर देखकर हम अनुमान कर सकते हैं।

बहुत दिनों तक सारनाथ विस्मृति के गर्त में पड़ा रहा। यवनों की राक्षसी दृष्टि ने उसका सौंदर्य मिटा दिया। मुहम्मद गोरी ने इसे नष्ट-भ्रष्ट किया, और बाद में अन्य यवन-बादशाहों ने भी इसे मिट्टी में मिलाने का प्रयत्न किया। पृथ्वी ने उसके संतप्त हृदय को अपनी छाती में लगा लिया। उसके खँडहर भी घास और मिट्टी से ढक गए, और प्रायः १२वीं शताब्दी के अंत से लेकर १९वीं शताब्दी के अंत तक उसके खँडहरों का अस्तित्व छिपा रहा। इसके पश्चात् जब पुरातत्त्व-विभाग ने इसकी खुदाई प्रारंभ की, तब से इसका जीर्णोद्धार प्रारंभ हुआ।

यहाँ की मुख्य दर्शनीय वस्तु अजायबघर है, जिसमें दो आने टिकट पड़ता है। इसमें खुदाई से निकली वस्तुओं का संग्रह है। मिट्टी के टूटे-फूटे बरतन, कुछ सिक्के, शिला-लेख और छोटी-बड़ी मूर्तियाँ यहाँ जमा हैं। बुद्ध भगवान् की नौ-दस फीट ऊँची पत्थर की मूर्ति, लाल पत्थर की बड़ी भारी छतरी, अशोक का चतुर्मुख सिंह आदि हैं। सिंह की मूर्ति इतनी प्राचीन है, पर उसकी पॉलिश ऐसी लगती है, जैसे कल ही हुई हो। इस सिंह-मूर्ति पर भी अशोक-स्तंभ की-सी पॉलिश है। इसमें पीठें जोड़े हुए चार सिंह बैठे हैं। यह मूर्ति स्तंभ की चोटी पर

थी—बाद में गिर पड़ी, और अजायबघर में रक्खी गई। बुद्ध की मिट्टी और पत्थर की, भिन्न-भिन्न आकार की, सैकड़ों छोटी-बड़ी मूर्तियाँ यहाँ हैं। इन मूर्तियों में एक मूर्ति विशेष वर्णन-योग्य है। यह प्रायः चार फ़ीट ऊँची है, और बुद्धजी की धर्मचक्र-प्रवर्तन-मुद्रा दरशाती है। इसकी चौकी में एक चक्र बना है, और उसके दोनो ओर बुद्ध के प्रथम पाँच शिष्य हाथ जोड़े बैठे हैं। यह मूर्ति इतनी सुंदर है कि देखते-देखते आँखें नहीं थकतीं। बुद्धजी की जितनी मूर्तियाँ अब तक मिली हैं, उनमें यह सबसे सुंदर है, और संसार-भर की सुंदर मूर्तियों में से एक समझी जाती है। एक लाल पत्थर की खड़ी हुई बहुत लंबी बुद्धजी की मूर्ति है। दो छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं, जिन पर बहुत अच्छा महीन काम है। मिट्टी के छोटे सिक्के, लोहे की मूर्तियाँ, पूजा का सामान, मटके और पत्थर आदि की मूर्तियाँ तथा एक बहुत बड़ी शिवजी की मूर्ति है। हम अनुमान कर सकते हैं कि हुएनसांग के समय में (जिसने सारनाथ के वैभव और समृद्धि का आँखों-देखा वर्णन किया है) सारनाथ जब विद्या, धर्म और कला का क्षेत्र रहा होगा, कितना सुंदर और आकर्षक होगा।

जब सब देखकर लौटे, तो जिस बच्चे को हम लोग बैठा गए थे, उसे न पाया। हम लोग बहुत घबराए। किंतु वहाँ फिर भारतीय सभ्यता और अतिथि-सत्कार

का एक ज्वलंत उदाहरण देखने में आया। किसी ग्राम-निवासी ने बच्चे को अकेले बैठे देखा, तो वह उसे अपनी झोपड़ी में ले आया, और सारा सामान भी उठवाकर ले गया। बच्चा खाट पर बैठा था, और उसके चारों ओर ६-७ मनुष्य और ६-७ स्त्रियाँ बैठी अपना-अपना काम कर रही थीं। एक ने बताया—"बच्चे की तबियत अकेले कैसे लगती, इससे हम लोग इसे यहाँ ले आए। घर पर काम न किया, यहीं अपना काम करते रहे। बच्चे की तबियत लग रही है।" मेरे धन्यवाद देने पर उन्होंने कहा—"यह हमारा अहोभाग्य है कि आप लोगों के दर्शन हम लोगों को हुए। जिस प्रकार राम ने वन जाकर वहाँ के लोगों को कृतार्थ किया था—वह वन-वन दर्शन देते रहते थे—वैसे ही आप लोगों के हुए।" कितनी सौम्यता, सभ्यता, भलमनसाहत और अतिथि-प्रेम की भावना इन लोगों में थी। मेरा हृदय गद्गद हो गया। एक हम नगर-निवासी हैं, जिनमें 'सभ्य' कहलाकर भी शिष्टता और प्रेम की बू तक नहीं! बच्चे को जल-पान कराया ही जा चुका था—हम लोग भी बिना उनका अतिथि-सत्कार ग्रहण किए न आ पाए। इस जीवन में सारनाथ की मधुर स्मृति कभी हम लोगों के हृदय से नहीं जा सकती।

वहाँ से चले। स्टेशन के रास्ते में सड़क के एक ओर एक ऊँचे टीले पर एक प्राचीन स्तूप है। उसे देखा।

यह चौखंडी स्तूप, धर्मचक्र-प्रवर्तन-स्तूप या सीता-रसोई भी कहलाता है। कहते हैं, लंका जाते समय सीताजी इसी

चौखंडी स्तूप

ओर से गई थीं। सन् १५८८ में अकबर ने अपने पिता हुमायूँ की स्मृति में इसे बनवाया था। स्वर्गीय श्रीजयशंकर 'प्रसाद' की 'ममता' शीर्षक कहानी में इसका आभास मिलता है। यह अठपहल मीनार के रूप में है। रास्ता बहुत ऊबड़-खाबड़ है। चोटी पर पहुँचने पर वह मीनार दिखाई दी।

इसके अंदर बहुत दूर नीचे तक अंधकार-सा है। अंदर एक लंबा-चौड़ा, गहरा कुआँ-सा बना है। यह वही स्थान है, जहाँ बुद्धजी ने ज्ञान प्राप्त करने के बाद सर्व-प्रथम अपने पाँचों शिष्यों को उपदेश दिया था। पूछने पर पता चला कि असली स्तूप तो टीले के नीचे दबा है। फिर आगे बढ़े, तो गाड़ी स्टेशन की ओर जाती दिखाई दी। हम लोग दौड़े, किंतु एक आदमी ने कहा—"व्यर्थ आप दौड़ते हैं, वह आपको नहीं मिल सकती।" हम लोग धीरे पड़ गए। किंतु इधर हम लोग स्टेशन पहुँचे, और उधर गाड़ी छूटी—दो मिनट की देर हो गई। हम लोगों को बड़ा दुःख हुआ कि व्यर्थ अब ३-४ घंटे पड़े रहना पड़ेगा। किंतु वहाँ के स्टेशन-मास्टर ने हम लोगों के साथ बड़ी सज्जनता का व्यवहार किया। उनके यहाँ लोगों से हम वार्तालाप करते रहे।

मुझे अब केवल सारनाथ के खँडहरों के विषय में थोड़ा-सा और कहना है। लगभग ४-५ फर्लांग लंबी और ४-५ फर्लांग चौड़ी पृथ्वी के क्षेत्रफल में ये खँडहर हैं। बड़े-बड़े कमरों की चहार-दीवारियाँ, तहखाने, नालियाँ, मंदिर आदि के खँडहर वहाँ हैं। कई शिला-लेख भी हैं। ३५-४० वर्ष से ही खुदाई हुई है। संभव है, और खुदाई होने पर और प्राचीन स्थानों के खँडहर मिलें। यहाँ विहार, स्तूप, मठ, पाठशालाएँ, अतिथि-शालाएँ, मंदिर और सुंदर

मकान रहे होंगे, उन्हीं के खँडहर हम देखते हैं। किंतु आज—

"इमारत पढ़ रही है मरसिया अपनी तबाही का !"

यहाँ की एक दर्शनीय वस्तु सारनाथ-मंदिर है। इसमें शिवजी की मूर्ति है। मंदिर एक ऊँचे टीले पर है। इस मंदिर के पीछे एक और छोटा-सा स्तूप और बारहदरी है। तथा थोड़ी दूर पर एक तालाब।

सारनाथ-स्टेशन से ५ बजे शाम की गाड़ी से हम लोग चले, और ½ घंटे में काशी पहुँच गए।

अयोध्या

भारतवर्ष की प्रसिद्ध, ऐतिहासिक और पौराणिक सात पुरियों में अयोध्यापुरी भी है। अयोध्या पुरी तथा इसके माहात्म्य के संबंध में वाल्मीकि-रामायण, संक्षिप्त अध्यात्म रामायण, पद्मपुराण के पाताल खंड, श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध, शिवपुराण, महाभारत, गरुड़पुराण, स्कंदपुराण आदि में लिखा है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र की जन्म-भूमि होने का इसी को सौभाग्य प्राप्त हुआ था। महाराज दशरथ 'कौशलेश' कहलाते थे। कौशला-प्रदेश भारतवर्ष का वह प्रांत था, जिसके अंतर्गत काशी, मथुरा, कपिलवस्तु तथा अन्य आस-पास की भूमि थी। इक्ष्वाकु भगवान् राम के पुरखे थे, जो सूर्य-वंशी थे। इन्हीं सूर्य-वंशी राजाओं की राजधानी अयोध्या रही है। भगवान् राम के पहले साठ राजा और हो चुके थे। अंतिम राजा सोलर के पश्चात् यह पुरी बर्बाद हो गई थी, पर प्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य ने जब उज्जैन को हटाकर इसे अपनी राजधानी बनाया, तब इसने फिर उन्नति की। मतलब यह कि अयोध्या बहुत प्राचीन पुरी है।

अयोध्या लखनऊ से ८४ मील है। जिला फ़ैज़ाबाद का

मुख्य नगर फ़ैज़ाबाद है, जो एक बड़ा जंक्शन है। यहाँ से अयोध्या का स्टेशन ४ मील है। ऐसा कहा जाता है कि वर्तमान अयोध्या प्राचीन अयोध्या से हटकर बसी है। प्राचीन अयोध्या अब मिट चुकी है। अयोध्या सरयू-नदी के किनारे बसी थी, और अब भी बसी है। संभव है, नदी ने अपना मार्ग कुछ बदला हो, या प्राचीन अयोध्या वर्तमान पुरी से कुछ हटकर आगे-पीछे बसी हो।

अयोध्यापुरी की जन-संख्या १०-१२ हज़ार है। मुसलमानों की संख्या हिंदुओं की संख्या से बहुत कम है। हिंदुओं का प्रभाव विशेषकर महंतों के कारण बहुत है। अयोध्याजी में एक ही मुख्य बाज़ार है, जो बड़ा और सीधा सरयू के किनारे तक चला गया है। इसमें आप सभी आवश्यक और सुख की सामग्री मोल ले सकते हैं। यहाँ कई स्कूल, कई अस्पताल, कई धर्मशाला और पुलिस-चौकियाँ, डाकघर तथा तारघर हैं। अयोध्या में बिजली और पाइप भी हैं।

फ़ैज़ाबाद ई० आई० आर० पर स्थित है। सरयू-नदी के उस पार बी० एन्० डबल्यू० आर० का स्टेशन लकड़मंडी है। यहाँ से अयोध्या आने के लिये पीपों का बना हुआ पुल पार करना पड़ता है। शायद एक या दो पैसे टैक्स देना पड़ता है। बरसात में नाव या स्टीमर से पार करते हैं। सरयू-नदी अयोध्या में काफ़ी गहरी है। इसमें मगर, घड़ियाल और सूस वग़ैरा बहुत हैं। कछुए भी बहुत हैं। नदी

में जल-जीव और नगर में बंदरों की सेना हरएक जगह आपका स्वागत करने को तैयार मिलेगी।

मैं दोपहर को अयोध्या-स्टेशन पर लखनऊ से उतरा। यहाँ से १॥ या २ मील पर बाज़ार है। स्टेशन पर इक्के-ताँगे मिल जाते हैं। किराया सस्ता है। थोड़ी दूर चलने पर आपको एक क़िला-सा दिखाई देने लगता है। यही यहाँ की प्रसिद्ध हनुमान्-गढ़ी है, जिसका वर्णन आगे करूँगा। इक्का सरयू-नदी के रेत पर खड़ा हुआ। हम लोगों ने घाघराजी (सरयू) में स्नान किया। स्नान करने के बाद दूर तक फैले हुए घाटों और किनारे के मंदिरों के दर्शन करते रहे। मुख्य घाट ये हैं—

(१) ऋण-मोचन-घाट

(२) सहस्रधारा-घाट

(३) लक्ष्मण-घाट—यह बहुत प्रसिद्ध घाट है। घाट पर लक्ष्मणजी का मंदिर है। कहते हैं, इसी स्थान से लक्ष्मणजी वैकुंठ-धाम गए थे।

(४) स्वर्गद्वार—इस घाट पर शाम को सरयूजी की आरती होती है, पर वह आनंद यहाँ नहीं आता, जो मथुराजी के विश्रांत-घाट पर यमुनाजी की आरती में आता है। इस पक्के घाट से आस-पास का दृश्य बहुत मनोरम है। पास ही नागेश्वरनाथ का प्रसिद्ध शिव-मंदिर है। यह मंदिर बहुत पुराना है। महाराज कुश ने यहाँ शिव-लिंग स्थापित किया था। इस ऐति-

हासिक मंदिर के निर्माण की कथा बड़ी रोचक है। महाराज कुश का एक बार एक आभूषण सरयू में गिरकर नागलोक पहुँचा। वह नागराज की कन्या को मिला। उसने कुशजी को वह आभूषण लौटाने से इनकार कर दिया। इस पर युद्ध हुआ। अंत में शिवजी के बीच में पड़ने से समझौता हुआ। कुशजी की प्रार्थना से शिवजी ने वहाँ निवास किया। यहाँ से पास ही श्रीरामचंद्रजी का प्रसिद्ध और पुराना मंदिर है। यहीं पर आदिनाथ का प्रसिद्ध जैनों का मंदिर है।

(५) गंगामहल-घाट

(६) शिवाला-घाट

(७) जटाई-घाट

(८) अहल्याबाई-घाट—यह प्रसिद्ध, पक्का घाट इंदौर की प्रसिद्ध रानी अहल्याबाई ने बनवाया था। पास ही त्रेता-नाथजी का बहुत पुराना मंदिर है। यह भी देखने योग्य स्थान है। भगवान् राम ने यहीं सीता की मूर्ति स्थापित की थी, और यज्ञ कराया था। इसका जीर्णोद्धार महारानी अहल्याबाई ने कराया था।

(९) धौरहरा-घाट

(१०) रूपकला-घाट

(११) नया-घाट—इसके पास ही तुलसीदासजी का मंदिर है। रात को यहाँ भी अच्छी आरती होती है। पास ही महात्मा मनीराम का आश्रम है। यहाँ रामजी का मंदिर है।

(१२) जानकी-घाट

(१३) राम-घाट

(१४) स्वर्गद्वार-घाट आदि ।

अयोध्या की सबसे मुख्य देखने योग्य वस्तु हनुमान्-गढ़ी है। यहाँ पचासों प्रसादी की दूकानें हैं। मैंने प्रसादी मोल ली,

हनुमान्-गढ़ी

लेकिन एक वानरराज ने प्रसादी का दोना मुझसे छीनकर गिरा दिया। अब की बहुत होशियारी से कुरते के नीचे दोना छिपाकर बड़े सतर्क भाव से मंदिर को चला। यहाँ

के बंदर मथुरा और चित्रकूट की भाँति बड़े बेढब होते हैं। खाना आपको कमरा बंद करके खाना पड़ता है। जरा आपकी निगाह चूकी और बंदर माल ले गए। ६०-७० सीढ़ी चढ़कर मंदिर में पहुँचना पड़ता है। मंदिर बहुत ऊँचे पर है। यहाँ महावीरजी की मूर्ति बैठी हुई और बहुत सुंदर है। मंदिर के अंदर फ़र्श पर चाँदी के रुपए जड़े बड़े अच्छे लगते हैं। मंदिर के चारों ओर बैरागियों के रहने की कोठरियाँ और आँगन हैं। मंदिर का प्रबंध और अधिकार हनुमान्-गढ़ी के महंत के हाथ में है। यहाँ के साधु बैरागी बहुत तगड़े हैं, और यहाँ के महंत बहुत धनी। कहते हैं, मंदिर के नीचे तहखाने बड़ी ख़ूबी से बनाए गए हैं।

यहाँ से थोड़ा दक्षिण की ओर चलने पर आपको आस-पास दो टीले मिलेंगे। एक टीले का नाम सुग्रीव-टीला और दूसरे का अंगद-टीला है। इनके ऊपर जाने के लिये पक्की ईंटों की सड़क-सी बनी है। बहुत ही छोटी-छोटी मूर्तियाँ और मंदिर इस स्थान के आस-पास (टीलों पर) हैं।

यहाँ से थोड़ी दूर पर जन्म-स्थान या यज्ञ-वेदी है। वशिष्ठजी की सलाह से राजा दशरथ ने यहीं पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था। कहते हैं, इसे मीर बाकी ताशकंदी (बाबर का एक सरदार) ने कुछ तुड़वा और बदलकर मसजिद बनवा दी है। यह मसजिद बड़ी सुंदर है, जिसमें बारह खंभे कसौटी पत्थर के हैं। इससे मिला ही एक चबूतरा-सा है,

जिस पर छोटा-सा मंदिर है, और राम और उनके भाइयों की मूर्तियाँ हैं। यज्ञ-वेदी के पास ही छठी का चूल्हा, सीता-रसोई, चौबीस अवतार, कोप-भवन, रत्नसिंहासन, आनंद-भवन, रंग-महल और साक्षी गोपाल आदि स्थान देखने योग्य हैं।

हनुमान्-गढ़ी से जन्म-स्थान जाते समय मार्ग में कनक-भवन या सीताजी का महल पड़ता है। यह मंदिर अयोध्या में सबसे बड़ा, सुंदर और प्रसिद्ध है। यहाँ की मूर्तियाँ बहुत सुंदर हैं। ददुआ साहब (महाराजा अयोध्या) के महल के पास ही वह प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस रचा था। यह स्थान तुलसी-चौरा कहलाता है। यहाँ से थोड़ी दूर पर मणि-पर्वत नाम का टीला है। इसके पास ही दतून-कुंड है। यहाँ सैकड़ों मंदिर हैं। प्रायः ६३ वैष्णव-मंदिर और ३२ शैव-मंदिर हैं। अयोध्या के कुछ और मंदिर ये हैं—

(१) सुन्दरि-रानी का मंदिर
(२) भिंगा-राजा का मंदिर
(३) बेतिया-राजा का मंदिर
(४) टिकारी-राजा का मंदिर
(५) रूसी बाबू का मंदिर
(६) नरहन-रानी का मंदिर
(७) राजा मोतीचंद का मंदिर आदि।

(८) गोविंददासजी का मंदिर, जहाँ १,००० बत्तियों की आरती होती है।

(९) पंचमंदिर (अयोध्या के राजा के महल के पास)

(१०) राजा मानसिंह की रानी का बनवाया राजद्वार नाम का मंदिर (हनुमान्-गढ़ी के सामने)

(११) कनक-भवन—यह ओरछा के महेंद्र महाराजा सवाई प्रतापसिंह बहादुर ने बनवाया है। यह बहुत सुंदर और देखने योग्य मंदिर है।

(१२) राजमहल-स्थान पर एक राम-मंदिर

(१३) रत्नसिंहासन-स्थान पर एक राम-मंदिर

(१४) आनंद-भवन-स्थान पर एक राम-मंदिर

(१५) राम-कचहरी-स्थान पर एक राम-मंदिर

(१६) कोप-भवन-स्थान पर एक राम-मंदिर

(१७) सीता-रसोई-नामक स्थान है।

अयोध्या में सबसे अच्छा और देखने योग्य स्थान महाराजा अयोध्या का प्रसिद्ध महल है। इसके अंदर एक छोटा-मोटा जिंदा अजायबघर-सा है, जिसमें तरह-तरह के पक्षी जमा किए गए हैं। उन पक्षियों का कलरव उस स्थान के सौंदर्य की और वृद्धि करता है। महल में हजारों की संख्या में कबूतर पले हुए हैं। महल के अंदर एक बहुत सुंदर वाटिका है। पंचमंदिर-नामक एक मंदिर राजा दर्शनसिंह का बनवाया भी इसमें है। दर्शनेश्वर शिव-लिंग

के अलावा गणेश, पार्वती और शिवजी आदि की मूर्तियाँ आस-पास हैं। मंदिर की दीवारों पर सुंदर-सुंदर चित्र और शीशे तथा सुंदर-सुंदर झाड़-फानूस हैं।

अयोध्या की परिक्रमा ६ कोस की है। परिक्रमा करने में मार्ग में (१) रघुनाथदास की गद्दी, (२) सीता-कुंड, (३) अग्नि-कुंड, (४) विद्या-कुंड, (५) मनी-पर्वत (यहाँ एक मंदिर है), (६) कुबेर-पर्वत, (७) सुग्रीव-पर्वत, (८) लक्ष्मण-घाट और टीला, (९) स्वर्गद्वार-घाट और (१०) राम-घाट आदि पड़ते हैं।

६ कोसी परिक्रमा के अलावा ५ कोसी, १४ कोसी और ८४ कोसी परिक्रमा भी कुछ लोग करते हैं।

अयोध्यापुरी के मंदिर देखकर हम लोग शाम को इक्के से फ़ैज़ाबाद आए। जंक्शन के पास नदहा और खोजमपुर छोटे गाँव हैं। यहीं से नाके को एक सड़क गई है। मार्ग जंगल से होकर है, और बहुत सुंदर है। प्राकृतिक दृश्य देखते हुए हम लोग फ़ैज़ाबाद पहुँचे। फ़ैज़ाबाद सुंदर नगर है। यहाँ लकड़ी का काम बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ देखने योग्य वस्तुएँ ये हैं—

गुप्तारघाट—फ़ैज़ाबाद से पकी सड़क यहाँ तक गई है। प्रायः ३ मील होगा। यहाँ स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। घाट के पास ही एक गद्दी-सी है, जिसमें एक मंदिर है। एक और मंदिर पास ही है। यहाँ एक छोटा-सा पार्क-सा

है। कुछ दूर पर निर्मल-कुंड और निर्मलनाथ महादेव का मंदिर है।

निकट ही भीख-घाट है। इसी ओर कैंटूनमेंट, सिविल लाइन और कोर्ट आदि हैं। कैंटूनमेंट के पास नदी के किनारे एक सुंदर गाँव सहादतगंज (लखनऊ-फैज़ाबाद-रोड पर) है। सुहावल के पास बिजली पैदा करके शहर में भेजी जाती है। रकाबगंज के पास म्यूज़ियम, बड़ा डाकखाना और डाक-बँगला आदि हैं।

गुलाब-बाड़ी—यह नगर के बिलकुल पास ही है। इसमें बहुत सुंदर बाग़ है, और एक मक़बरा भी है। खेलने का छोटा मैदान भी यहाँ है।

इमामबाड़ा—अवध के बादशाह का बनवाया हुआ एक बहुत सुंदर इमामबाड़ा है।

बहू बेगम का मक़बरा—यह बहुत सुंदर है। इसका बग़ीचा भी बहुत अच्छा है, इमारत बहुत ऊँची है।

शुजाउद्दौला का मक़बरा—यह बहू बेगम के मक़बरे के पास ही है, लेकिन उससे छोटा है। यहाँ तीन क़ब्रें पास-ही-पास बनी हैं।

फ़ैज़ाबाद के मुख्य मुहल्ले फ़तेहगंज (राम-जानकी का मंदिर है), रकाबगंज (सिविल हास्पिटल और मनोहरलाल-हाई-स्कूल), लालगंज, चौक, बज़ाज़ा, महाजनी टोला, हैदरगंज, सब्ज़ी मंडी, काश्मीरी मुहल्ला, रीठगंज आदि हैं।

साहबगंज में वाटर-वर्क्स और राम-जानकी का मंदिर है। रेलवे-लाइन के किनारे फतेहगंज के पास कॉलेज आदि हैं। गुदरी बाजार से होकर धारा-घाट को और इसी ओर से बेगमगंज गड़हिया को सड़क गई है। इस ओर से भी गुप्तार घाट जा सकते हैं।

फैजाबाद से थोड़ी दूर पर और देखने योग्य स्थान सोनखर, सूर्य-कुंड, जनौरा और नंदीग्राम आदि हैं। सूर्य-कुंड में एक पक्का तालाब और उसके एक किनारे पर सूर्यदेव का मंदिर है। जनौरा में गिरिजा-कुंड नाम का एक पक्का तालाब और एक शिव-मंदिर है। जनौरा और नाका (नाका में हनुमान्-गढ़ी छोटी) के बीच में एरोड्रोम है। इसी के पास से सुल्तानपुर-इलाहाबाद को सड़क गई है। नंदी-ग्राम में भरत-कुंड और भरतजी का एक मंदिर है। भरतजी यहीं चौदह वर्ष रामचंद्रजी के वन जाने पर रहे थे। अयोध्या की परिक्रमा में (जो स्वर्गद्वार से शुरू होती है) सूर्य-कुंड, जनौरा आदि पड़ते हैं। पर परिक्रमा या तो रामनवमी या सावन के महीने में विशेष रूप से की जाती है। रामनवमी, सावन-मास तथा पूर्णमासी को यहाँ बहुत भीड़ होती है। रामघाट से ८ मील पूर्व की ओर सरयू-नदी के किनारे वह स्थान है, जहाँ दशरथजी की अंत्येष्टि-क्रिया की गई थी।

अयोध्या केवल राम-भक्तों के लिये ही विशेष महत्त्व नहीं रखती, जैनों तथा बौद्ध-मतावलंबियों के लिये भी यह

स्थान महत्त्व-पूर्ण है। कहते हैं, जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव यहीं के राजा थे। यह भी कहा जाता है कि जैनों के २४ तीर्थंकरों में पाँच तीर्थंकर यहीं पैदा हुए थे। जैनों के पाँच प्रसिद्ध मंदिर (आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनंदननाथ, सुमंतनाथ तथा अनंतनाथ) यहाँ हैं। गौतम बुद्ध ने भी कई वर्ष यहीं निवास किया है।

अयोध्या भी सदा से ही ऐतिहासिक घटनाओं का केंद्र रही है। न-जाने कितने वंश के हिंदू-राजाओं ने यहाँ राज्य किया। न-जाने कितने यवन बादशाहों ने अयोध्या में लूट-मार की, और देव-मंदिर तोड़े। बाबर और औरंगजेब ने बहुत-से हिंदू-मंदिरों को तोड़वाया, और अकबर के समय में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ।

अब तो फ़ैज़ाबाद और अयोध्या मामूली नगर हैं। उनकी प्रसिद्धि और महत्ता का कारण वहाँ के देव-मंदिरों के कारण ही है। फ़ैज़ाबाद एक नगर है, इसलिये वहाँ कोर्ट-अस्पताल, सदरछावनी, स्कूल आदि सभी हैं। अब तो अयोध्या में भी बिजली और 'वाटर-पाइप' पहुँच गए हैं। यहाँ की राम-लीला अति प्रसिद्ध है।

प्रयाग

हिंदुस्थान के जितने भी पुराने नगर और तीर्थ हैं, वे लगभग सभी नदियों के किनारे हैं। ऐसा होने का एक खास कारण है। पुराने जमाने में आने-जाने के रास्ते सड़कें थीं या नदियाँ। उस समय की सड़कें इतनी अच्छी न थीं, जितनी आजकल हैं। उन कच्ची सड़कों पर ऊँट, घोड़े या बैलगाड़ी पर यात्रा करने से न केवल समय और धन ही अधिक लगता था, बल्कि चोर-डाकुओं का भी डर रहता था। और भी बहुत तरह की असुविधाएँ थीं। रेल तो इधर सौ वर्षों से बनी है। यही कारण था कि नावों से आने-जाने और व्यापार की सुविधा होने के कारण नदी के किनारे ही नगर बस जाते थे। जहाँ नदियों का संगम (मिलान) हुआ, उस स्थान के महत्त्व का क्या कहना! भाग्य-वश प्रयाग में तो गंगा, यमुना और सरस्वती, तीन नदियों का मेल होता है, इसलिये प्रयाग बहुत ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

हिंदुस्थानी हमेशा से नदियों को पावन समझते आए हैं। नदियाँ पवित्र देवियाँ हैं। जहाँ तीन-तीन देवियाँ एक साथ मिलें, उस स्थान की पवित्रता और महत्त्व का क्या

कहना। नदियों से हमें जितना फ़ायदा होता है, वह तो छोड़ दीजिए, गंगा-जल को स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से देखिए। गंगा-जल में कभी कीड़ा नहीं पड़ता। गंगा-जल इस्तेमाल करने से बहुत-से असाध्य रोग दूर हो जाते हैं। गंगा हिमालय के उन भागों से बहकर आती हैं, जहाँ बहुत तरह की जड़ी-बूटियाँ उगती हैं। इसी से गंगा-जल इतना पवित्र माना गया है।

सरस्वती-नदी तो है नहीं। लोगों का कहना है, कलियुग में वह ग़ायब हो गई है। अब वह क़िले के पास नीचे-ही-नीचे यमुना में मिलती है। क़िले के पास यात्रियों से पुजाने के लिये एक छोटे-से कुंड को सरस्वती-कुंड बतलाया जाता है।

क्या आनंद संगम नहाने में आता है। आप यमुनाजी के पुल के पास गया-घाट से नाव कीजिए। एक आने में आना-जाना। हाँ, मेले के दिनों में नावों का किराया एक रुपया तक हो जाता है! यमुना का पाट बहुत चौड़ा है। यमुनाजी गहरी भी बहुत हैं। यमुना का श्याम जल गंभीर भाव से बहता है। धारा बहुत तेज नहीं है। बड़े मजे में नावें जाती हैं। पहले पुल पड़ता है। पुल का एक खंभा 'लँगड़ी कोठी' कहलाता है, क्योंकि यह और खंभों की तरह सीधा नहीं है।

इधर-उधर का दृश्य देखते हुए आप नाव पर आगे बढ़ते

जाते हैं। अपनी बाँई ओर, किनारे पर, पुल के उस पार, आपको वह स्थान मिलेगा, जहाँ बंबे द्वारा नगर-भर का गंदा पानी आता है। और आगे बढ़िए, तो आपको किनारे पर, बहुत ऊँचाई पर, एक सुंदर पार्क दिखाई देगा, जिसमें एक ऊँचा पिलर (खंभा)-सा बना है। यह मिंटो-पार्क कहलाता है। किनारे पर, ऊँचे पर, सुंदर कोठियाँ भी बनी हैं। और आगे बढ़ने पर वह स्थान है, जहाँ सन् १९०९-१० में बड़ी नुमाइश हुई थी। पार्क भी उसी की यादगार में बनवाया गया है, ऐसा कहा जाता है। उस नुमाइश का स्मृति-चिह्न पक्के बने हुए घाट और पक्की, ऊँची दीवारें-ही हैं, जिनमें बड़े-बड़े लोहे के कड़े लगे हैं। यह स्थान बड़े-बड़े स्टीमरों और छोटे-छोटे जहाजों का बंदरगाह रहा होगा। अब तो टूटी-फूटी दशा में वे अपने पहले की कहानी सुना रहे हैं। थोड़ा और आगे बढ़ने पर अकबर का प्रसिद्ध क़िला पड़ता है। यहाँ यमुना बहुत गहरी हैं। यहाँ छोटे-छोटे लड़के तैरते हुए आपको दिखाई देंगे। आप नदी में पैसा फेंकिए, और वे गोता मारकर पानी से पैसा निकाल लावेंगे। क़िले के बाद बालूदार जमीन है। हर ओर आपको नावें-ही-नावें दिखलाई देंगी—यात्रियों को लाती और ले जाती हुई, और साधुओं की नावें देवताओं की मूर्तियाँ रक्खे हुए। साधु नाव पर घूमते और यात्रियों से पैसे चढ़वाते रहते हैं। क़रीब २ मील चलने के बाद त्रिवेणी के दर्शन होने लगते हैं। गंगाजी का

पानी मटमैला है, गहरी कम है, लेकिन बहाव बहुत तेज है। गंगा और यमुना का जहाँ संगम होता है, वहाँ का दृश्य बहुत मनोरम है। नीला और पीला जल साफ़ अलग-अलग दिखाई देता है। यहाँ से उनका मिला हुआ जल बनारस की ओर तेजी से बहता है। सैकड़ों नावें यहाँ लगी होती हैं। पंडों, ब्राह्मणों और घटवारों की सेना इधर-उधर घूमती दिखाई देती है। कितना आनंद वहाँ स्नान करने में आता है! यों तो भक्तों का जमाव सदा ही रहता है, पर मुख्य-मुख्य पर्वों में लोग खास तौर से नहाने आते हैं।

माघ-मेला प्रयाग में हर साल होता है। लोग महीने-भर संगम के मैदान में, कुटी में रहकर 'कल्प-वास' करते हैं। मकर की संक्रांति से लेकर कुंभ की संक्रांति तक यह मेला रहता है। अमावस के दिन तो लाखों आदमी नहाते हैं।

हर बारहवें वर्ष कुंभ का मेला होता है। सन् १६३० के कुंभ-मेले में जाने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। अनेक साधु-महंतों के अखाड़े यहाँ आते हैं। बड़े भारी-भारी जलूस साधुओं के निकलते हैं—साथ में हाथी, घोड़े, ऊँट, झंडी, झंडे और बाजे भी होते हैं। बारी-बारी से अखाड़ों के स्नान होते हैं, और फिर अपने-अपने स्थानों पर लौट जाते हैं। लोगों का अंदाज था कि क़रीब ४०-५० लाख आदमी उस कुंभ पर आया होगा। संगम की बालू पर अच्छा-खासा शहर-सा बस गया था। अनेक दूकानें वहाँ थीं। रेल भी

वहाँ तक जाने लगी थी। कुंभ हर बारहवें वर्ष और अर्ध-कुंभी हर छठे वर्ष पड़ती है।

इस कुंभ के रखने का कारण यह रहा होगा कि हिंदुस्थान-भर के साधु एक स्थान पर इकट्ठे होकर धार्मिक विषयों पर वार्तालाप करें। कितना सुंदर लक्ष्य था, लेकिन अब तो साधुओं उर्फ़ मुफ़्तख़ोरों की टोलियों का वहाँ जमाव होता है। सन् ३० में भी दो अखाड़ों में मार-पीट हो गई थी, और एक हाथी के बिगड़ जाने पर कई जानें गईं थीं।

कुंभ-मेले के बारे में एक बड़ी रोचक कहानी है। जब देवताओं और राक्षसों के बीच समुद्र मथने से निकले हुए चौदह रत्नों के लिये लड़ाई हो रही थी, तब बृहस्पतिजी चुपके से अमृत का घड़ा लेकर भागे। असुरों ने जब यह जाना, तो भागीरथी, त्रिवेणी, गोदावरी और शिप्रा-नदी पर बृहस्पतिजी से लड़े। उस छीना-झपटी में अमृत की बूँदें इन स्थानों पर छलक पड़ीं। इससे कुंभराशि के बृहस्पति होने पर हरिद्वार में, वृष के बृहस्पति होने पर प्रयाग में, सिंह के बृहस्पति और सूर्य के सिंह राशि के होने पर नासिक में और सिंह के बृहस्पति होने पर उज्जैन में बारह-बारह वर्ष के बाद कुंभ पड़ता है।

संगम से झूँसी दिखाई पड़ता है। गंगाजी नाव से पार कर हम लोग झूँसी पहुँचे। गंगाजी का बहाव बहुत तेज़ था। पहले बालू पर चलना पड़ता है, फिर बहुत ऊँचे पर

सीढ़ियों द्वारा चढ़ना पड़ता है। झूँसी एक क़िला-सा मालूम होता है। बस्ती ज़्यादातर साधुओं की है, और बहुत ऊँचे पर है। यह बहुत पुराना और सुंदर स्थान है। पहले गोपालजी का मंदिर पड़ा, फिर महावीरजी का, उसके बाद एक धर्मशाला थी, जो बहुत सुंदर थी। उसी में एक मंदिर भी था। उसके बाद समुद्र-कूप पड़ा। यह कुआँ बहुत बड़ा, गहरा और पत्थर का बना है। फिर एक कृष्ण-मंदिर पड़ा। सबको देखकर नीचे सीढ़ियों से उतरे। नीचे परमहंस की गुफा आदि देखी।

यहाँ से थोड़ी दूर पर हंसकूप है, और हंसकूप से थोड़ी दूर पर तिवारीजी का सुंदर पत्थर का बना मंदिर।

स्नान करने के बाद हम लोग नाव से लौटे। यमुना के उस पार जंगल है। कहीं-कहीं एकांत स्थान पर मंदिर बने हुए दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं खेती होती है बाक़ी ज़मीन ख़ाली पड़ी है। यमुना में तोमड़े-से पड़े दिखाई देते हैं। वह जाल के सिरे पर बँधे होते हैं। बड़े-बड़े जाल मछलियाँ पकड़ने के लिये पड़े रहते हैं।

हम लोग क़िले पर उतर पड़े। यहाँ से क़िले के अंदर गए। क़िले में अँगरेज़ी फ़ौज रहती है। क़िले के अंदर घूमने की आज्ञा नहीं, केवल एक छोटे फाटक से अक्षयवट तक जाने के लिये हिंदू यात्रियों को आज्ञा है। फाटक सवेरे से शाम तक खुला रहता है। फाटक से क़रीब एक फ़र्लांग पर एक

गुफा है, जो पत्थर की बनी है। सामने मैदान में आपको बहुत ऊँचे बेतार के तार के खंभे खड़े दिखाई देंगे। गुफा काफ़ी गहरी है। उसमें अँधेरा रहता है, पर थोड़ा-बहुत प्रकाश रोशनदानों से आता है। गुफा के अंदर धर्मराज, अन्नपूर्णा, संकट-मोचन, महालक्ष्मी, गौरी-गणेश, आदिगणेश, बालमुकुंद ब्रह्मचारी, प्रयागराजेश्वर शिव, शूलकंटकेश्वर, अक्षयवट, गौरीशंकर, सत्यनारायण, यमदंड महादेव, भैरव, ललितादेवी, गंगाजी, कार्त्तिकेयजी, नृसिंहजी, सरस्वती, विष्णु, यमुना, दत्तात्रेय, पवनदेव, मार्कंडेय, गोरखनाथ, जांबवान, सूर्यनारायण, अनसूया, वेदव्यास, वरुण, सिद्ध-नाथ, वेणीमाधव, कुबेर, अग्नि-देवता, दूधनाथ, पार्वतीजी, सोमतीर्थ, दुर्वासा, राम-लक्ष्मण, शेषनाग, यमराज, अनंत-माधव, साक्षी विनायक और गणेशजी आदि के दर्शन हैं।

सबसे प्रसिद्ध दर्शन यहाँ अक्षयवट के हैं। कहते हैं, यह अक्षयवट बहुत पुराना है। जब पृथ्वी पर प्रलय हो जाती है, तब भी यह नहीं डूबता, बल्कि बढ़ता है, और पत्ते पर बहते हुए बालगोविंद इसी पर विश्राम करते हैं। इस वृक्ष का वर्णन वाल्मीकीय और तुलसी-कृत रामायण में है। वृक्ष केवल एक तना-मात्र है, न डाली हैं, न पत्ते, और न वह गुफा के बाहर ही है।

यह क़िला अकबर बादशाह ने बनवाया था। कहते हैं, अपनी हिंदू रानी के लिये ही उसने यह मंदिर बनवाया था।

सन् १६४० में जब मैं इस क़िले के अंदर गया, तो दूसरी ओर से आना पड़ा। पहला फाटक बंद कर दिया गया था। यात्रियों की एक टोली सरकारी नौकर निश्चित मार्ग से मंदिर तक ले जाते थे, और दर्शन करने के बाद उनके आ जाने पर दूसरी टोली जाती थी। मार्ग में अशोक की प्रसिद्ध लाट पड़ती है। क़िले के अंदर हज़ारों तोपें रक्खी हैं, और वहाँ शायद लड़ाई का सामान बना करता है। इस मज़बूत क़िले के चारों ओर गहरी खाई है।

क़िले के आस-पास देखने योग्य ये स्थान हैं—

(१) वेणी महावीर—यह ज़मीन में पड़े हैं। क़िले के बिलकुल पास ही यह मंदिर है।

(२) मनकामेश्वर महादेव—यह क़िले के पास ही पश्चिम में है।

(३) सोमनाथ शिव—क़िले से कुछ दूर गंगाजी के किनारे प्रसिद्ध मंदिर है।

(४) नागेश्वर महादेव—छतनगा ग्राम में।

(५) प्रसिद्ध दारागंज में बिंदुमाधवजी का मंदिर है। क़िले से दारागंज का बाज़ार कोई १-१॥ मील होगा। गंगा की ओर दारागंज बसा है। इस ओर हिंदी-साहित्यिकों की अधिक बस्ती है, और कई हिंदी के छापेख़ाने भी हैं।

बिंदुमाधवजी का मंदिर अब किसी भक्त ने पक्का बढ़िया करवा दिया है।

(६) गंगाजी के किनारे दशाश्वमेध घाट और दशाश्व-मेधेश्वर शिव का पुराना मंदिर है।

(७) वासुकी सर्पराज का मंदिर बक्सी मुहल्ले में है।

(८) यहाँ से कुछ दूर बलदेवजी का मंदिर है।

(९) गंगाजी के किनारे शिवकुटी और शिवजी की कचहरी है। यह स्थान बहुत सुंदर है, और श्रावण में यहाँ स्नान करने से बड़ा पुण्य होता है।

(१०) दारागंज से चौक आते समय सड़क के किनारे अलोपीदेवी का मंदिर है।

(११) भरद्वाज-आश्रम—यह करनैलगंज में आनंद-भवन के बिलकुल पास है। यह बहुत पुराना स्थान है। यहाँ भरद्वाज-गुफा, शिवजी और शेषनागजी का मंदिर है। इससे मिला हुआ एक सुंदर बाग़ है।

(१२) कल्याणीदेवी—गुजराती मुहल्ले से थोड़ी दूर पर देवीजी का मंदिर है। मंदिर नया बना है, पर बहुत प्रसिद्ध है।

इन धार्मिक स्थानों तथा मंदिरों की कुछ और देखने योग्य चीजें ये हैं—

चौक-बाज़ार—यह यहाँ का ख़ास बाज़ार है। बाज़ार बहुत लंबा-चौड़ा है। बाज़ार के बीचोबीच में ऊँचा घंटाघर है, और घंटाघर से मिली हुई मंडी। यहाँ से एक सीधी सड़क विश्व-विद्यालय की ओर (कटरा) जाती है। रेल के पुल के पास

की इलेक्ट्रिक-पावर-हाउस है। सड़क के ओर एक चर्च है, कई कॉलेज हैं, और विश्वविद्यालय का एक होस्टल पड़ता है।

भरद्वाज-आश्रम

और आगे बढ़ने पर, कमला नेहरू-रोड पर, पुरुषोत्तमदास-पार्क है। इस पार्क में सभाएँ और मीटिंगें होती हैं। यहाँ से एक सड़क सिविल लाइंस को जाती है, और एक सीधी हाई-कोर्ट आदि को गई है। इस ओर बड़े-बड़े आदमियों के बँगले हैं।

मुझे इलाहाबाद की सिविल लाइंस और बाजार आदि बहुत पसंद आया। यहाँ बड़ी सफाई रहती है। और आगे

बढ़ने पर अल्फ्रेड-पार्क है, जिसे लोग आजाद-पार्क भी कहने लगे हैं, क्योंकि यहाँ प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता चंद्रशेखर आजाद मारे गए थे। यह बहुत सुंदर और बहुत लंबा-चौड़ा है। लोगों के बैठने के लिये पेड़ों के नीचे चारो ओर तिपाइयाँ पड़ी हैं। बीचोबीच में एक सुंदर घेरा है, जिस पर ऊँचा, सुंदर चबूतरा बना है। इस पर कभी-कभी बैंड बजता है। एक ओर (थोड़ी दूर पर) विक्टोरिया की संगमरमर की मूर्ति है। थोड़ी दूरी पर ग्रीनहाउस है, जहाँ संसार-भर के पेड़-पौधे इकट्ठा किए गए हैं, और जाली के मकानों के अंदर पौधे और बेलें छाई हैं। पास ही थार्नहिल-मैन-मेमोरियल लाइब्रेरी है, जो सबेरे और शाम खुलती है। पार्क में एक ओर खेलने के मैदान हैं। इस पार्क से थोड़ी दूर पर एक ओर ट्रेनिंग-कॉलेज और उसका होस्टल है, और दूसरी ओर प्रयाग-विश्वविद्यालय। इसका मेमोहाल, सिनेटहाउस, पुस्तकालय और कॉलेज-भवन, खेलने के मैदान, तैरने के टैंक, म्योर-कॉलेज, हिंदू-बोर्डिंगहाउस और अन्य होस्टल आदि बहुत सुंदर और प्रसिद्ध हैं।

विश्वविद्यालय देखने के बाद आनंद-भवन देखने जाना चाहिए। यह भरद्वाज-आश्रम के सामने है। पं० मोतीलालजी नेहरू ने स्वराज्य-आश्रम को कांग्रेस को भेंट कर दिया। आनंद-भवन में पं० जवाहरलाल नेहरू का निवास-स्थान है। यह बहुत सुंदर बना है।

इनके अलावा हाईकोर्ट, ख़ुसरो-बाग़, कृषि-विद्यालय, हिंदी-विद्यापीठ, सेक्रेटरियट के भवन, हिंदुस्थानी एकेडमी के भवन, कमला नेहरू-अस्पताल और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के भवन भी देखने योग्य हैं।

हाईकोर्ट—यह दोमंजिली बहुत बड़ी इमारत है। युक्त प्रांत का यह सबसे बड़ा न्यायालय है। ऊपर के कमरों में जज बैठते हैं और नीचे के कमरों में दफ़्तर हैं। चारो ओर के कमरे बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर किराए पर लिए हैं।

ख़ुसरो-बाग़—बाग़ एक ऊँची पत्थर की चहारदीवारी के अंदर है। यह जंक्शन स्टेशन के क़रीब और प्रसिद्ध ग्रांड-ट्रंक रोड पर है। बाग़ बहुत सुंदर और लंबा-चौड़ा है। बाग़ के बीच में तीन मक़बरे हैं।

लीडर रोड पर ख़ुसरो-बाग़ है—चारो ओर सुंदर, सुडौल दीवारों से घिरा। उत्तर और दक्षिण की ओर दो बड़े दरवाज़े हैं। इसमें ४ विशाल समाधि-मंदिर हैं, जिन पर मुग़ल-काल की शिल्पकला और चित्रकला का सुंदर प्रदर्शन बारीकी से किया गया है। सामने कई सुहावने हरी घास और फूल के पौधों के पार्क हैं। यहीं के अमरूद बहुत अच्छे होते हैं। रहमतआरा बेगम की समाधि जो ख़ुसरो की मा थी, यहीं है। सन् १६०८ में सलीम (जहाँगीर) ने अकबर का विरोध किया, और यह बाग़ बनवाया। सलीम के बादशाह होने पर ख़ुसरो ने भी विरोध किया, लेकिन क़ैदी

के रूप में यहीं रक्खा गया। यहीं मरा और दफ़नाया गया।

पूर्व की ओर पहली और दूसरी समाधि की शिल्पकला अकबर के समाधि-मंदिर से मिलती-जुलती है, जिसमें राजपूत और मुसलमानी शिल्पकला का सुंदर सम्मिश्रण है। राजपूत शिल्पकार दरवाज़े की मेहराब (Arch) की बनावट में अनुक्रमिक सीढ़ियों का उपयोग करते हैं, लेकिन मुसलिम गोलाकार मेहराब बनाते हैं। राजपूत-मंदिरों की बनावट में ऊपर के सिरे में कमल के आकार का फूल और कलश मिलता है, परंतु बाग़ के मंदिरों में गुंबदों के ऊपर ये दोनो बातें पाई जाती हैं। केवल रहमतआरा बेगम के मंदिरों में ये बातें नहीं पाई जातीं।

ख़ुसरो का समाधि-मंदिर—यह और समाधियों के पूर्व में है। इसके ऊपर एक बड़ा ही सुंदर गुंबद है। चारो ओर चारो किनारों पर ४ छोटे-छोटे शोभाशाली गुंबद बने हैं, जिन पर बड़े सुहावने कलश हैं। इस विशाल समाधि का मध्य भाग अधिक विस्तृत सिकंदरा से मिलता-जुलता है। इस मंदिर पर फ़ारसी-लिपि में ख़ुसरो का कुछ परिचय और निर्माण-काल १६२२ ई० लिखा है। ख़ुसरो अंधा करके यहीं रक्खा गया था, जब उसने जहाँगीर से विद्रोह किया था। यहीं मरा।

सुलतानुन्निसा बेगम ख़ुसरो की बहन का समाधि-मंदिर—

इसकी भी बनावट सिकंदरा की-सी है, लेकिन और मंदिरों की-सी रंगीन चित्रकारी नहीं। यह १६४६ में मरी।

रहमतआरा बेगम (महाराज भगवान की लड़की, राजा मानसिंह की बहन, ख़ुसरो की मा, जहाँगीर की स्त्री, पहले नाम था मानबाई) का समाधि-मंदिर—इस मंदिर में कई बच्चों की भी समाधियाँ हैं। समाधि की बनावट मुसलमानी ढंग की है। उत्तर और दक्षिण की ओर समाधि की दो चौरस शिलाओं पर गुणों की प्रशंसा है।

तंबोलिन का समाधि-मंदिर—यह रहमतआरा की समाधि के पश्चिम में है। इसमें समाधि का कोई चिह्न नहीं। संभव है, यह फ़तेहपुर सीकरी की इस्तंबोली बेगम की समाधि हो।

खुलदाबाद सराय—कालविन अस्पताल के पश्चिम की ओर से ग्रांड-ट्रंक रोड स्टेशन से आती हुई, करेलाबाग़ रोड को पार करती हुई खुलदाबाद सराय की ओर जाती है। यह सराय रहमतआरा बेगम की समाधि के सामने ही लगभग एक फ़र्लांग की दूरी पर है। सराय के पास ग्रांड-ट्रंक रोड पर पूर्व और पश्चिम की ओर दो फाटक हैं। इनकी चित्रकारी प्रशंसनीय है। ग्रांड-ट्रंक रोड के पश्चिमी फाटक पर एक बड़ा कुआँ बना है। फाटक पर लिखा है—जहाँगीर की आज्ञा से यात्रियों और सैनिकों के लिये बनी। आजकल बहुत गंदी और बुरी हालत में है। अब तरकारी की सब्ज़ी मंडी है।

ख़ुसरो-बाग़ से मिला ही इलाहाबाद का वाटरवर्क्स है। यहाँ बहुत बड़े-बड़े, पक्के तालाब ऊँचे पर बने हैं, जिनमें पानी भरा रहता है। यहीं एक ऊँची लोहे की टंकी है।

कृषि-विद्यालय—यह यमुना के पुल के पास है। यहाँ कृषि-संबंधी और 'डेरीफार्म'-संबंधी शिक्षा दी जाती है।

हिंदी-विद्यापीठ—कृषि-विद्यालय के क़रीब ही है। यहाँ हिंदी की उच्च शिक्षा और अन्य विषयों की हिंदी में शिक्षा दी जाती है।

सेक्रेटरियट के भवन—ये पत्थर के बने और बहुत सुंदर हैं। हाईस्कूल और इंटरमीडिएट-बोर्ड के दफ़्तर भी यहीं हैं।

हिंदुस्थानी एकेडमी—इसका दफ़्तर प्रयाग-स्टेशन के पास है। यह बड़ी महत्त्व-पूर्ण संस्था है।

कमला नेहरू-मेमोरियल अस्पताल—भारत के गौरव पं० जवाहरलाल नेहरू की स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरू की स्मृति में यह स्त्रियों का अस्पताल बना है।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का भवन—यह लाल भवन चौक से एक मील दूर है। यहीं प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की परीक्षाएँ होती हैं। हर साल भारत के किसी-न-किसी नगर में सम्मेलन का अधिवेशन होता है। इन अधिवेशनों के सभापतियों के तैल-चित्र यहाँ दीवारों पर चारों ओर लगे हैं। सम्मेलन का पुस्तकालय भी बहुत सुंदर है। मैंने सन् १९३८ में, यहीं से उत्तमा परीक्षा पास की थी।

प्रयाग से एक स्थान काफी दूर जरूर है, पर है देखने योग्य। यमुना के बीचोबीच में एक टापू-सा है, उस पर

कमला नेहरू-मेमोरियल अस्पताल
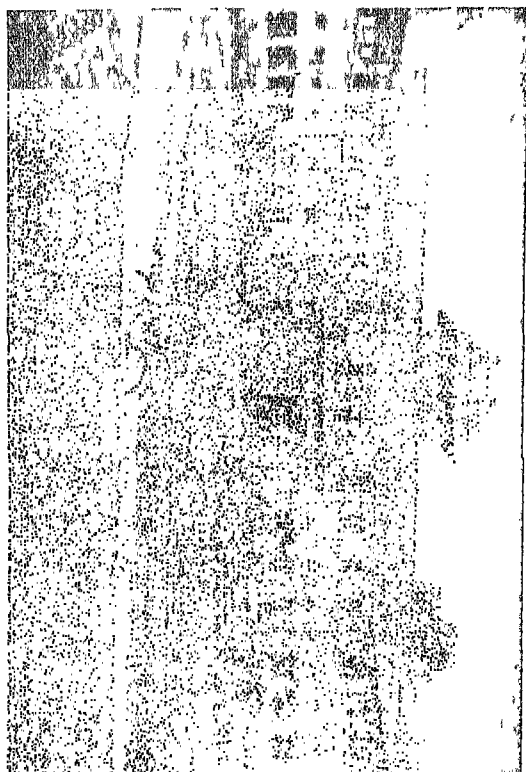
सजीवन देवता का मंदिर है। यमुनाजी बहुत गहरी हैं। वहाँ मगर वगैरा भी बहुत हैं। नाव से जाना होता है।

प्रयाग से रेल या सड़क द्वारा नैनी भी जाया जा सकता

है। यहाँ शीशे, चीनी आदि के कई कारखाने हैं। यहीं अंधों और कोढ़ियों के अस्पताल हैं। यहीं नैनी सेंट्रल जेल है। व्यापार की दृष्टि से नैनी बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

प्रयाग बहुत पवित्र भूमि है। न-जाने कितने महर्षियों ने यहाँ तप और यज्ञ किए हैं, न-जाने कितनी पौराणिक कथाएँ प्रयाग के संबंध में हैं। यह नगरी सत्ययुग से है। शंखासुर-बध के पश्चात् ब्रह्मा का यहाँ दस अश्वमेध यज्ञ करना, भगवान् राम का वन-गमन के समय भरद्वाज-आश्रम में आना, पांडवों के लाख के घर आदि की कथा से इसकी प्राचीनता मालूम पड़ती है।

यहाँ ई० आई० आर०, जी० आई० पी० आर० और बी० एन्० डब्ल्यू० आर० आदि आती हैं। इलाहाबाद में इन रेलों के चार स्टेशन हैं (झूँसी और नैनी को छोड़कर)। यहाँ यमुना और गंगा पर कई पुल हैं।

प्रयाग में कई धर्मशालाएँ और होटल हैं। यात्री पंडों के यहाँ भी ठहरते हैं। प्रयाग में भक्त लोग संगम में स्नान करने के लिये ही प्रायः आते हैं। व्यापार की दृष्टि से भी प्रयाग एक बड़ा स्थान है। युक्त प्रांत के बड़े-बड़े नगरों में प्रयाग का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। देश-भक्त पं० जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर काटजू, सर सप्रू, महामना मालवीयजी, माननीय श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडन आदि की यह निवास-भूमि है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर 'बिस्मिल' और हिंदी के कई प्रसिद्ध कवि

और लेखक यहाँ रहते हैं। धीरेंद्र वर्मा, श्रीमहादेवी वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० 'रसाल,' पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक साहित्य-सेवी यहाँ रहते हैं। लीडर अखबार और प्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती, चाँद आदि यहीं से निकलती हैं। इंडियन-प्रेस भी यहीं है। अब 'अमृत बाज़ार पत्रिका' भी यहाँ से निकलती है।

प्रयाग में कायस्थ-पाठशाला, क्राइस्ट चर्च आदि अनेक कॉलेज और स्कूल हैं। प्रयाग बहुत प्राचीन काल से ही शिक्षा का केंद्र रहा है। इलाहाबाद के अमरूद बहुत प्रसिद्ध हैं। इलाहाबाद से लगभग ५० मील विंध्याचल है, जहाँ प्रसिद्ध विंध्यवासिनी देवी का मंदिर है।

अब केवल प्रयागराज की परिक्रमा के विषय में और कहना है।

मैंने स्वयं तो इस स्थान की परिक्रमा की नहीं, परंतु श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा लिखित 'प्रयाग पंचकोशी की परिक्रमा' और 'प्रयाग-माहात्म्य'-नामक पुस्तक में वर्णित परिक्रमा का ब्योरा संक्षेप में लिखता हूँ।

प्रत्येक तीर्थ-स्थान की परिक्रमा की भाँति प्रयाग की भी परिक्रमा का माहात्म्य है। प्रयाग-क्षेत्र की जितनी सीमा है, उसकी प्रदक्षिणा करना ही परिक्रमा है। प्रयाग की पंचकोशी परिक्रमा बहिर्वेदी कहलाती है। १० दिन में यह परिक्रमा होती है। दूसरी अंतर्वेदी परिक्रमा २ दिन की होती है।

(१) बहिर्वेदी परिक्रमा—त्रिवेणी-स्नान के बाद क़िले के पास यमुना पार करके सामने ही शूलटंकेश्वर शिव, सुधा-रस तीर्थ, उर्वशी-कुंड होते आदि वेणीमाधव के दर्शन कर हनुमान्-तीर्थ, सीता-कुंड, राम-तीर्थ, वरुण-तीर्थ, चक्रमाधव-तीर्थ होता सोमेश्वरनाथ के क्षेत्र में रहे।

(२) प्रातःकाल सोम-तीर्थ, सूर्य-तीर्थ, कुबेर-तीर्थ, वायु-तीर्थ, अग्नि-तीर्थ होते देवरिख गाँव जाय, जहाँ महाप्रभु वल्लभाचार्य की बैठक है। फिर नैनी स्टेशन से सड़क-सड़क होते नैनीगाँव जाकर गदामाधव-दर्शन के बाद कंबला-श्वतर (छौंकी स्टेशन पार सैनी) होकर रामसागर पर रहे।

(३) वीकर देवरिया जाय। पक्की सड़क है। यमुना के किनारे रहे

(४) यमुना पार करके करदहा के पास वनखंडी शिव के क्षेत्र होते बेगम सराय में रहे।

(५) यहाँ से नीमघाट होते हुए द्रौपदी-घाट पर रहे।

(६) गंगा-तट पर शिवकोटि या कोटितीर्थ पर रहे।

(७) मंडिला महादेव होते मानस-तीर्थ में रहे।

(८) वहाँ से झूसी होकर नागेश्वरनाथ के क्षेत्र में नाग-तीर्थ या शंखमाधव में रहे।

(९) शंखमाधव से व्यास-आश्रम, समुद्रकूप होते गंगा-जी के किनारे एला-तीर्थ, संकष्टहर माधव, संध्यावट, हंस-

कूप, हंस-तीर्थ, ब्रह्मकुंड, उर्वशी-तीर्थ, अरुंधती-तीर्थ होते प्रतिष्ठानपुर (भूसी) में रहे।

(१०) त्रिवेणी-स्नान करके बहिर्वेदी परिक्रमा समाप्त करे, और वहीं रहे।

(१) अंतर्वेदी परिक्रमा—त्रिवेणी-स्नान करके अक्षयवट आदि के दर्शनोपरांत मधुकुल्या, घृतकुल्या, निरंजन-तीर्थ, आदित्य-तीर्थ, भयमोचन-तीर्थ, पापमोचन-तीर्थ, गोवर्धन-तीर्थ, राम-तीर्थ, सरस्वती-कुंड, कामेश्वर-तीर्थ या मनकामेश्वर होते वरुणा-घाट जाय। वहाँ से तक्षकेश्वर, तक्षक-कुंड, कालिय-ह्रद, चक्र-तीर्थ आदि, ककरहा-घाट के पास सिंधुसागर-तीर्थ, अटाले के पांडव-कूप, गढ़ई की सराय में वरुण-कूप होते चौक में द्रव्येश्वरनाथ, सूर्य-कुंड होते भरद्वाज-आश्रम में रहे।

(२) प्रातःकाल नागवासुकी, दारागंज के वेणीमाधव होते दशाश्वमेध-घाट पर शिवजी के दर्शनोपरांत लक्ष्मी-तीर्थ, उर्वशी-तीर्थ, दत्त-तीर्थ, सोम, दुर्वासा, हनुमान् आदि के दर्शन कर त्रिवेणी-तट पर आ अंतर्वेदी परिक्रमा पूरी करे। इस परिक्रमा करने का विशेष माहात्म्य कार्त्तिक अक्षय-नवमी और मकर-संक्रांति को है। पंचकोशी परिक्रमा चैत्र-कृष्ण-तृतीया से अमावस्या तक करनी चाहिए। प्रयाग-क्षेत्र के तीन भाग हैं।

(१) गंगा-यमुना के बीच का भाग—प्रयाग, (२) यमुना

के इस पार का भाग—अलर्कपुर या अरैल, (३) गंगा के उस पार का भाग प्रतिष्ठानपुर या झूँसी है।

गोला-गोकर्णनाथ

मुझे एक बार मुहम्मदी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ जाने के लिये गोला-गोकर्णनाथ-स्टेशन तक ट्रेन से जाना पड़ता है, और गोला-गोकर्ण से मोटर जाती है। इस बहाने मुझे गोला-गोकर्ण देखने का अवसर मिला। यह लखीमपुर से क़रीब २० मील होगा। यहाँ का मुख्य महत्त्व गोकर्णनाथ महादेव के कारण है। बहँगी लिए हुए पचासों की संख्या में एक साथ गाँव के लोग बहुधा इस ओर पैदल आते हुए लखनऊ में दिखाई देते हैं। यों तो यात्री सदा ही आते-जाते रहते हैं, क्योंकि प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है. लेकिन दो समय मेला बहुत ज़ोरों से होता है—चैत के महीने में यहाँ १५ दिन मेला रहता है, और शिवरात्रि पर भी बड़ी भीड़ रहती है—लगभग एक लाख तक यात्री आ जाते होंगे। यहाँ महादेवजी की पूजा करने से भुक्ति-मुक्ति (संसार के सुख और मोक्ष) मिलती और पापों का नाश होता है।

इसके नामकरण की कथा बड़ी रोचक है। वाराह-पुराण में एक कथा है। सनत्कुमारजी ने एक बार ब्रह्माजी से पूछा कि शिव का नाम उत्तर-गोकर्ण दक्षिण-गोकर्ण और शृंगेश्वर किस प्रकार पड़ा? ब्रह्माजी ने बताया—एक बार शिवजी

मुंजवान नामी पर्वत से श्लेष्मातम-नामक वन में चले गए—नंदीश्वर को यह आज्ञा देकर कि किसी को मेरा पता न बताना। एक बार इंद्र ने नंदीश्वर से इनका पता पूछा। नंदीश्वर के न बताने पर इंद्र, ब्रह्मा और विष्णु इन्हें ढूँढ़ने लगे। अंत में श्लेष्मातम-वन में मृग के रूप में पाया, और पहचान लिया। मृग-रूपधारी शिव भागे। उनके पीछे तीनो देवता भी दौड़े। अंत में सींग हाथ में आया। इंद्र के हाथ में आगे का भाग, ब्रह्मा के हाथ में बीच का भाग और विष्णु के हाथ में नीचे का भाग। मृग गायब हो गया—केवल तीन टुकड़े में सींग ही देवताओं के हाथ में रह गया। इंद्र ने अपना शृंग-भाग स्वर्ग में स्थापित किया, और ब्रह्मा ने शृंग-खंड उसी भूमि में स्थापित किया, जहाँ मृग हाथ में आया था। ये ही दोनो भाग गोकर्ण नाम से प्रसिद्ध हुए। विष्णु के स्थापित शृंग-भाग ने शृंगेश्वर नाम पाया। शिवजी उन स्थानों पर अपनी कला से स्थित हो गए।

एक बार रावण इंद्र को हराकर इंद्रपुरी से गोकर्णेश्वर शिव को लंका लिए जाता था। मार्ग में संध्योपासन के समय उसने शिव-लिंग भूमि पर रख दिया। बाद में रावण के लाख सिर मारने पर भी शिव-लिंग टस से मस न हुआ। अंत में रावण को निराश होकर लंका लौट जाना पड़ा। वही दक्षिण-गोकर्ण के नाम से और ब्रह्मा का स्थापित शृंग-

खंड उत्तर-गोकर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह गोला-गोकर्णनाथ ही ब्रह्मा का स्थापित उत्तर-गोकर्ण है।

स्टेशन से १-२ फ़र्लांग पर ही मंदिर है। मंदिर के पास एक पक्का बड़ा कुंड है। चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। कुंड के एक ओर दूकानों की क़तार चली गई है दूर तक, जिनमें खाने-पीने और पूजा-प्रसादी आदि का सामान बिकता है। मंदिर काफ़ी बड़ा है। शिव-लिंग मंदिर के फ़र्श की सतह से नीचे पर है। उस पर लोहे की जाली लगी है। लोग जाली पर ही फल-फूल और जल चढ़ाते हैं। मंदिर के बाहर, उसके पास ही, बहुत-से छोटे-छोटे मंदिर-से बने हैं। संभव है, वहाँ अनेक समाधियाँ भी हों। बहुत-सी समाधियाँ-सी बनी हैं।

बिठूर

कानपुर से बिठूर जाने के लिये मंधना-जंक्शन पर गाड़ी बदलनी पड़ती है, पर गंगा-स्नान पर सीधी कानपुर के अनवरगंज स्टेशन से बिठूर को गाड़ी जाती है। इसे ब्रह्मावर्त भी कहते हैं। स्टेशन से क़रीब एक-डेढ़ मील बाद बस्ती शुरू हो जाती है। गंगाजी के दाहने किनारे पर बिठूर की पुरानी बस्ती है। ब्रह्मावर्त की खूँटी नाम से प्रसिद्ध गंगा के किनारे एक बहुत छोटा-सा मंदिर है। घाट की सीढ़ियों पर एक फ़ुट ऊँची लोहे की खूँटी है। प्राचीन बिठूर में ब्रह्मा-घाट है। कहते हैं, यह राजा टिकैतराय का बनवाया हुआ है। आस-पास क़रीब २ फ़र्लांग तक पक्के घाटों की एक क़तार चली गई है। कुछ घाट अहल्याबाई और बाजीराव पेशवा के बनवाए बतलाए जाते हैं। घाट से सटे हुए पक्के, ऊँचे-ऊँचे मकान बने हैं, जो या तो पंडों के हैं, या उन धार्मिक धनियों के, जिन्होंने अपने रहने या यात्रियों के सुख के लिये उन्हें बनवाया है। यहाँ घाट पर वाल्मीकेश्वर शिव का मंदिर है। और भी कई छोटे-छोटे मंदिर हैं, जैसे ब्रह्मेश्वर, कपिलेश्वर, भूतेश्वर, धीरेश्वर आदि। ब्रह्मावर्त की खूँटी के

सामने ही, क़रीब ४०-५० गज की दूरी पर, भगवान् का एक मंदिर और एक धर्मशाला है, जो लखनऊ के एक कायस्थ सज्जन की बनवाई हुई है। घाट के पास पेशवा का बनवाया एक दीप-स्तंभ भी है।

बिठूर से कुछ दूर पर देखने योग्य स्थान ये हैं—बिठूर से २-३ मील बरहद या बर्हिष्मतीपुरी है। कहते हैं, मनुजी का जन्म यहीं हुआ था। यहीं पुराने समय में एक विशाल गढ़ था, ऐसा बतलाया जाता है। काकपक्षेश्वर का मंदिर भी देखने योग्य है।

बिठूर से थोड़ी दूर पर ध्रुव-टीला है। यहाँ भी, बतलाया जाता है, पुराने समय में एक क़िला था, और ध्रुवजी का यहीं जन्म हुआ था।

वाल्मीकि-आश्रम—यहाँ से ६ मील पर एक आश्रम है। कहते हैं, महात्मा वाल्मीकिजी का जन्म यहीं हुआ था। यह गाँव बेलाकरपुर कहलाता है। पास ही एक कुआँ है, जिसमें छिपकर महर्षि उस समय रहा करते थे, जब वह डाकू का काम करते थे। अब तो आश्रम बहुत सुंदर हो गया है। यहाँ एक छोटा-सा शिव-मंदिर है, और थोड़ी दूर पर अहरानीदेवी का मंदिर है। यहीं रामचंद्रजी द्वारा त्यागी हुई सीताजी के गर्भ से लव-कुश का जन्म हुआ था, और वाल्मीकिजी ने रामायण की रचना की थी, जो वाल्मीकीय रामायण के नाम से प्रसिद्ध है।

बिठूर का वर्णन वाल्मीकीय रामायण के उत्तर-कांड में सीता-वनवास के सिलसिले में है। बिठूर का वर्णन पद्म-पुराण के पाताल-खंड में रामचंद्रजी के अश्व छोड़ने, लव-कुश-युद्ध और अंत में लव-कुश तथा सीता के अयोध्या आने के सिलसिले में है। जैमिनि-पुराण में भी बिठूर का वर्णन रामचंद्र के अश्वमेध-यज्ञ और लव-कुश-युद्धादि के सिलसिले में है। महाभारत के वनपर्व में भी ब्रह्मावर्त के माहात्म्य का वर्णन है। वैसे ही मत्स्य-पुराण और वामन-पुराण में भी इसके माहात्म्य का वर्णन है। जो मनुष्य बिठूर में रहता है, यहाँ जाता है, स्नान-दर्शन आदि करता है, उसे बहुत पुण्य होता और मोक्ष प्राप्त होती है। श्रीमद्‌भागवत के तीसरे स्कंध में ब्रह्मावर्त का वर्णन है। कहते हैं, ब्रह्मा ने जब सृष्टि का निर्माण कर लिया, तब यहाँ अश्वमेध-यज्ञ किया। यह तो हुई ब्रह्मावर्त की प्राचीनता और धार्मिक दृष्टि से महत्ता।

बिठूर ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व-पूर्ण है। बाजी-राव पेशवा का राज्य छीनकर उसे आठ लाख रुपए वार्षिक पेंशन दी गई, और बिठूर में रहने की आज्ञा हुई। पेशवा ने यहाँ अपने महल बनवाए, जो सिपाही-विद्रोह के बाद अँगरेजों ने नष्ट कर दिए। उनकी कन्या मैना भी जीवित जला दी गई। पेशवा के दत्तक (गोद लिया हुआ)

पुत्र नाना साहब (नाना धुँधूपंत पेशवा) ने अँगरेजों के विरुद्ध खूब युद्ध किया--प्रसिद्ध वीर ताँतिया टोपी की सहायता से कानपुर और आस-पास के विद्रोहियों के वह प्रधान नेता (अगुआ) हो गए। उन्होंने बहुत-से अँगरेजों को मार डाला। 'भारत में अँगरेज़ी राज्य' में बहुत विस्तार से उस समय की घटना का वर्णन किया गया है। बाद में उन्हें भागना पड़ा। पेशवाओं के नाश के पश्चात् बिठूर की शोभा भी बहुत कुछ कम हो गई। नाना साहब का बाड़ा ब्रह्मावर्त की खूँटी के पास ही है। यहाँ देवी का मंदिर है।

बिठूर काफी बड़ा कस्बा है, पर इसकी आबादी बहुत ज्यादा नहीं है। हाँ, धार्मिक पर्वों और विशेषकर गंगा-स्नान पर यहाँ लाखों की संख्या में यात्री आते हैं। उस समय तो अनेक स्पेशल ट्रेनें छूटने पर भी, भेड़-बकरी की भाँति यात्रियों के गाड़ी में भरने पर भी, बहुत-से यात्री रह जाते हैं। गंगा-स्नान के समय दूर-दूर से दूकानदार आते हैं। १०-१५ दिन तो यहाँ इतनी ज्यादा चहल-पहल रहती है कि यह नगर को भी मात करता है। प्रायः सभी तरह के खेल-खिलौने, कपड़े, बिसातखाने तथा खाने-पीने और चिउड़े, गट्टे, कंठी आदि पूजा और प्रसादी की अनगिनत दूकानें यहाँ गंगाजी के किनारे, बालूवाले लंबे-चौड़े मैदान में, लगती हैं। यहाँ काफी बिक्री होती है, और दूकानदारों को बड़ा लाभ होता है। गंगा-स्नान पर बिठूर में तिल धरने को जगह मिलना मुश्किल

हो जाता है। रहने का स्थान भी कठिनता से मिलता है। हज़ारों बैलगाड़ियाँ, इक्के, ताँगे और मोटर भी यहाँ उन दिनों दिखाई देते हैं, जिन पर अमीर आदमी आते हैं। लखनऊ और कानपुर से बहुत आदमी जाते हैं, क्योंकि यह इन स्थानों से बहुत पास है। मुझे कम-से-कम १०-१२ बार यहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ दिन-भर लोग घूमते और चुहलबाज़ी करते हैं। ख़ासकर लखनऊ के कनकौवेबाज़ों का यहाँ बड़ा जमाव रहता है।

इधर ५-६ वर्ष से 'परियर'* का मेला नहीं लगता, नहीं तो गंगाजी के उस पार बड़ा मेला लगता था। प्रायः मीलों तक दूकानों की क़तारें और रहने के तंबू लगे रहते थे। लोग नाव द्वारा उस पार का मेला देखने जाते थे। उस ओर ज़्यादातर देहाती मेला रहता था। गर्दोग़ुबार और गंदगी भी काफ़ी उस समय हो जाती है, और यह स्वाभाविक ही है। इस पार के मेले को परिहर (परिमल) का मेला कहते हैं। यहाँ सीताजी का मंदिर है। कहते हैं, यहीं लक्ष्मणजी ने

---

* यह गाँव हमारे परबाबा के छोटे भाई स्व० श्रीमान् नवल-किशोरजी सी० आई० ई० ने ख़रीदकर वक़्फ़ कर दिया है। इसकी आमदनी दान-पुण्य में ही लगाई जाती है। लखनऊ के माईजी सरस्वती-घाट और नवलकिशोर-संस्कृत-विद्यालय इसी की आमदनी से चलते हैं।—दुलारेलाल

सीताजी को छोड़ा था, और बड़ी देर तक देखते रहे थे। पास ही शिवजी का मठ है। यहाँ से ५ मील पर अदिवना का ताल है।

मैं तो प्रायः गंगा-तट पर, ब्रह्मावर्त की खूँटीवाले घाट के बाएँ ओर, ३०-४० गज की दूरी पर, एक पंडाजी का घर है, उसी में टिकता हूँ। मकान के सामने गंगाजी पर एक ऊँचा चबूतरा और उस पर बहुत बड़ा पीपल का पेड़ है। वहाँ से गंगाजी का दृश्य बहुत सुंदर होता है। खासकर सायंकाल के पश्चात् जब लोग दीपक जलाकर तथा फूल के दोने सजाकर गंगाजी में बहाते हैं, तो एक अपूर्व सुंदरता उत्पन्न होती है। उस रंग-बिरंगे दृश्य को लोग घाट से बैठकर या नौका-विहार करते समय देखते हैं। रात के वक्त उस पार के जलते हुए दिए तथा अग्नि बहुत सुंदर लगते हैं। भक्त देहातियों का रात-भर ढोलक-मजीरे के साथ भजन करना और बीच-बीच में घंटे-घड़ियाल की ध्वनि बहुत मनोरम मालूम होती है। हम लोग रात को अपने निवास-स्थान से आनंद लिया करते थे। गंगा-तट पर जब खिचड़ी या बाटी बनती है, और सब आदमी गंगाजी के किनारे जल में पैर डाले बैठे रहते और भोजन करते तथा गंगा-तट की शोभा देखते हैं, तब हृदय को बड़ी प्रसन्नता होती है। बिठूर में और देखने योग्य स्थान ये हैं—

(१) शृंगीरामपुर—शृंगी ऋषि ने यहाँ यज्ञ किया था। यह स्थान गंगा के उस पार है।

(२) महाराज विराट का क़िला (बरहट)—गंगा के इसी पार बस्ती से क़रीब दो मील है। क़िला अब कहाँ, पर वह स्थान है।

(३) भूतेश्वर महादेव—यह मंदिर भी इस पार है। कहते हैं, सुबह बालक, दोपहर को जवान और शाम को बूढ़े रूप में शिव के दर्शन होते हैं।

(४) वाल्मीकि-आश्रम के निकट 'बड़ा मंदिर'—फ़तेहपुर सीकरीवालों का है।

(५) गंगाबाई का मंदिर—यह भी वाल्मीकि-आश्रम के पास है।

(६) ऊँटखाना या ऊँटखाना, गजेंद्र का थान और वाल्मीकि-आश्रम, ये सब स्टेशन के पास हैं। वाल्मीकि-आश्रम बहुत प्रसिद्ध है। यहीं कपिल मुनि का मठ और ज्ञानेश्वरजी का स्थान है।

(७) महाराज-घाट—यह बाजीराव का घाट है। यहाँ स्नान का माहात्म्य है।

(८) स्वामीजी का आश्रम—प्राय: ५ मील पैदल मार्ग महाराज-घाट से है।

(९) सरकार-घाट—यहाँ गंगाजी की मूर्ति है।

(१०) लक्ष्मण-घाट।

(११) उत्तानपाद का क़िला—इसके पीछे ध्रुवजी का मंदिर है। यह पुराने बिठूर में है। यहाँ गोपाला हलवाई की बर्फ़ी बहुत प्रसिद्ध है।

(१२) सतीजी का मंदिर—बाबा खंडेराव, स्वामी गंगाधरेश्वर की कुटी उर्फ़ झंडेराव। यहाँ से एक मील पर पटकापुर में स्वामीजी का मंदिर है। यहाँ एक खिन्नी का पेड़ है।

(१३) बड़े और छोटे हनुमान्‌जी।

(१४) हाट का नागड़ स्वामी का माठ—यहाँ कालीजी का मेला होता है।

नैमिषारण्य और मिश्रिक

लखनऊ से नैमिषारण्य जाने के तीन मार्ग हैं—(१) सीतापुर होते हुए—(सीतापुर में गाड़ी बदलनी पड़ती है)। (२) सँडीले से। सँडीला अच्छा क़स्बा है। यह हरदोई-जिले में है, और तहसील तथा परगने का सदर मुक़ाम है। यहाँ के लड्डू बहुत मशहूर हैं। यहाँ दीवानी और फ़ौजदारी कचहरियाँ हैं। तहसीलदार भी यहाँ रहते हैं। यहाँ का बाजार स्टेशन से क़रीब १॥ मील है। नैमिष आदि जाने के लिये यहाँ इक्के, बैलगाड़ियाँ आदि मिल जाती हैं। यहाँ अस्पताल भी है, और कई प्रारंभिक शिक्षा के और मिडिल स्कूल भी हैं। कुछ लोग बघोली-स्टेशन (जो सँडीला से १८ मील उत्तर-पश्चिम है) से भी जाते हैं। यहाँ से गोमती-नदी के किनारे १४-१५ मील उत्तर नैमिषारण्य है। सँडीला मुगलसराय-सहारनपुर-लाइन (ई० आई० आर०) पर लखनऊ से ३० मील उत्तर-पश्चिम है। (३) बालामऊ होते हुए (बालामऊ में गाड़ी बदलनी पड़ती है)। पहला और तीसरा मार्ग ही अधिक प्रचलित है।

नैमिषारण्य-स्टेशन बस्ती से क़रीब १॥ मील है। स्टेशन से बस्ती तक के मार्ग में मकान आदि नहीं हैं। मार्ग में सुंदर

पेड़ों और झाड़ियों से भरा जंगल पड़ता है। प्राकृतिक दृश्य की दृष्टि से यह स्थान बहुत सुंदर है। यह एक बड़ा क़स्बा है। यहाँ खासकर पंडों और उनके नौकरों की आबादी है। मकान प्रायः कच्चे, मिट्टी और खपरैलों के हैं। कुछ मकान पक्के भी हैं। यहाँ का बाजार अच्छा है। चारों ओर जंगल हैं। आम यहाँ बहुत होता है। यात्रियों के ठहरने के लिये चक्र-तीर्थ-नामक कुंड के क़रीब और बस्ती के आस-

चक्र-तीर्थ
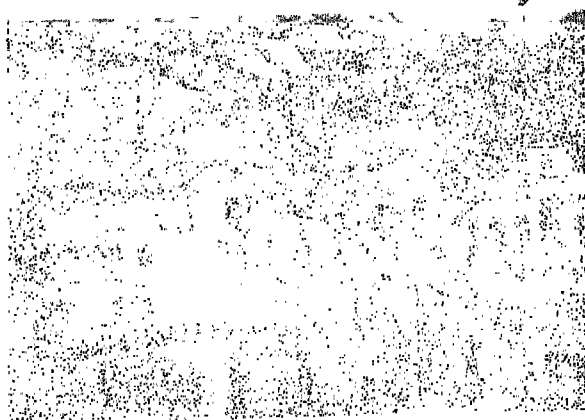
पास बहुत सी धर्मशालाएँ हैं, जहाँ यात्री सुविधापूर्वक ठहर सकते हैं। पंडों के यहाँ भी ठहर सकते हैं। मैं अपने पंडे के यहाँ ठहरा। पंडे के घर से चक्र-तीर्थ तक पक्की ईंटों की छोटी सड़क बनी है। इसके दोनों ओर मकान और फिर

छोटा-सा बाजार है, बाजार क्या है, कुछ खाने-पीने आदि की चीजें यहाँ बिकती हैं। चक्र-तीर्थ एक पक्का कुंड है। यह गोल बना है, और १००-१२५ गज के घेरे में है। कुंड के अंदर थोड़ी दूर पर एक गोल, पक्की, जालीदार दीवार-सी बनी है, जिसके अंदर अथाह जल है। इस तरह कुंड दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। एक मेले में बहुत-से यात्री डूब गए थे, तभी से सरकार ने जालीदार कुंड बनवाकर यह प्रबंध कर दिया है। कुंड का पानी हरा और गंदा था। कुंड के चारों ओर पत्थर की सीढ़ियाँ और चबूतरे हैं। चक्र-तीर्थ में स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। कुंड के पास एक पक्का, छोटा-सा पोखरा बना है, जिसमें कुंड का फाजिल पानी, जो कुंड के जल के उमड़ने से होता है, गिरता है, और वहाँ से एक ऐसे स्थान में बह जाता है, जिसे लोग गोदावरी-नर्मदा कहते हैं। कुंड के चारों ओर कई देवताओं के मंदिर हैं। यहाँ का मुख्य मंदिर भूतनाथ महादेवजी का है। यहाँ से थोड़ी दूर पर पंच-प्रयाग नाम का एक पक्का कुंड है। कुंड पर बरगद के पेड़ भी हैं। यह स्थान भी पवित्र माना जाता है।

यहाँ से थोड़ी दूर पर ललितादेवी का मंदिर है। मंदिर बहुत सुंदर है। मंदिर के आस-पास कई कुंड हैं। एक मंदिर के बाहर प्रसिद्ध पंच-प्रयाग नाम का है। मंदिर के अंदर जाने के लिये पहले एक फाटक पड़ता है। फाटक के दाहनी ओर

मंदिर है। ललितादेवी की मूर्ति बड़ी विशाल है। एक बड़ा 'हॉल'-सा है, उसी में एक ओर मूर्ति है। फर्श पक्का है।

ललितादेवी का मंदिर

यहाँ से आगे बढ़े, तो घने आम के बग़ीचों से होकर जाना पड़ा। नैमिषारण्य की जमीन ऊँची-नीची है। प्राकृतिक दृश्यों तथा चारों ओर की हरियाली देखते हुए आगे बढ़ते गए। दोपहर में भी सूर्य की तेज किरणें आम के घने पेड़ों को पार करके धरती तक नहीं आ सकतीं। चिड़ियों की चहचहाहट और शीतल, मंद, सुगंधित हवा से पूर्ण स्थान से होते हुए हम लोग एक ऐसे ऊँचे टीले पर पहुँचे, जहाँ पंडे ने पुराने समय की बनी हुई यज्ञ भूमि और यज्ञ-कुंड दिखलाए। यह सप्तर्षियों का टीला कहलाता है। जमीन

पक्की थी, लेकिन खँडहर की शक्ल में। मैं सोचता था, किसी समय यहाँ हजारों कंठों की आवाजें 'स्वाहा-स्वाहा' करके आकाश को गुँजा देती होंगी; किसी समय यहाँ अनेक ऋषि-मुनि वेद-मंत्र पढ़कर चारों दिशाओं को गुँजा देते होंगे; किसी समय यहाँ धूप, कपूर, अगर, चंदन आदि की सुगंधित लपटें मनुष्यों की आत्माओं को शांति से भर देती होंगी; किसी समय यहाँ अनेक तपस्वी अपने शिष्यों के साथ भगवान् का भजन करते होंगे और वेद, पुराण, शास्त्र आदि धार्मिक पुस्तकें पढ़-पढ़ाकर अपने तथा और लोगों के इस लोक और परलोक के सुखों और परमार्थ पर विचार किया करते होंगे।

यहाँ के देखने योग्य स्थानों में गोवर्द्धन महादेव, क्षेमकायादेवी, जानकी-कुंड, विश्वनाथजी और अन्नपूर्णाजी के मंदिर, लोलार्क-कुंड (यह स्थान काशी के नाम से प्रसिद्ध है) और धर्मराज आदि हैं। ललितेश्वर शिव-लिंग और दधीचि द्वारा स्थापित एक दधीचीश्वर शिव-लिंग यहाँ बतलाया जाता है।

सबसे सुंदर स्थान गोमती - नदी से थोड़ी दूर पर एक ऊँचा टीला है। यहाँ से चारों ओर का दृश्य बहुत मनोरम दिखाई देता है। यह वेदव्यासजी का आश्रम है। यहाँ आते ही चित्त प्रसन्न हो गया। यहीं पर आस-पास शुकदेवजी की गद्दी, मनु और शतरूपा के (मैदान पर) चबूतरे-से बने हैं।

व्यास-गंगा नाम का एक स्थान है। कहते हैं, पहले यहाँ एक कुंड था, जो अब बालू से भर गया है। ब्रह्मावर्त तथा गंगोत्तरी-कुंड भी बालू से भर गए थे।

गोमती-नदी के पास एक पक्का कुंड है, जिसे शायद गोमती-कुंड कहते हैं। इसमें भी नहाने का माहात्म्य है। पुष्कर-सरोवर में भी नहाने का माहात्म्य है।

नैमिषारण्य में गोमती-नदी बहती है। सबेरे और शाम को गोमती के किनारे बड़ी शांति रहती और बहुत सुंदर दृश्य होता है। गोमती के किनारे ही प्रसिद्ध दशाश्वमेध-घाट है।
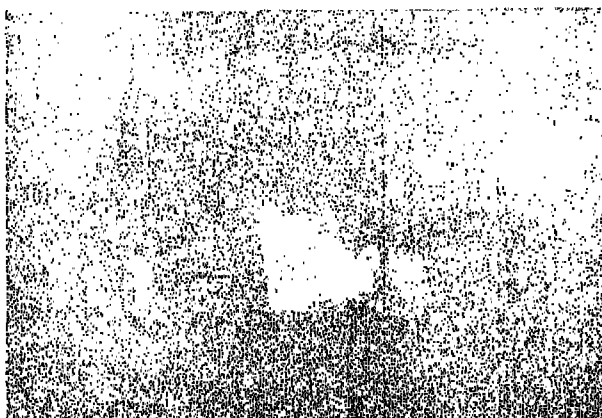
दशाश्वमेध-घाट (गोमती-तट पर)

एक टीले पर, जो इसी के नाम से प्रसिद्ध है, भगवान् रामचंद्रजी का मंदिर है। इस घाट के नामकरण का कारण

यह बतलाया जाता है कि भगवान् राम ने अयोध्या से इसी स्थान पर आकर अश्वमेध-यज्ञ किया था।

यहाँ कुछ और देखने योग्य स्थान ये हैं—

पांडव-क़िला एक ऊँचा टीला है। इस पर भगवान् कृष्णजी का एक मंदिर है, और पांडवों की मूर्तियाँ भी हैं। संभव है, पांडव कभी यहाँ रहे हों। पास ही वाराह-कूप है। टीले पर कई एक छोटी-छोटी गुफाएँ हैं, जिनमें से कुछ में साधु रहते हैं, कुछ में कुछ मूर्तियाँ हैं। एक बड़े मंदिर में सूतजी की गद्दी है। पास ही राधा-कृष्ण और बलदेवजी आदि की मूर्तियाँ हैं। और भी कई छोटे-छोटे मंदिर यहाँ होंगे।

हम लोग पंडाजी के यहाँ, चक्र-तीर्थ के बिलकुल पास ही, टिके थे। मकान से एक ही फ़र्लांग पर एक बहुत ऊँचा टीला था, जिस पर महावीरजी की खड़ी अति विशाल मूर्ति है। कहते हैं, हिंदुस्थान-भर में महावीरजी की इससे बड़ी मूर्ति नहीं। टीला काफ़ी बड़ा और जंगलों से घिरा है। इसके चारों ओर की नीची ज़मीन पर जंगल-ही-जंगल है। मुझे इस सून-सान स्थान पर घूमने में बहुत आनंद आया।

इस स्थान की जल-वायु बहुत सुंदर है। बहुत-से लोग केवल जल-वायु के लिये ही यहाँ आकर रहते हैं। शांति यहाँ इतनी है, और प्राकृतिक दृश्यों से यह स्थान इतना सुंदर है कि सचमुच अब भी यह तपोभूमि मालूम पड़ता है। यहाँ मनुष्य का मस्तिष्क सात्त्विक भावों से भर जाता है।

मेले—हर अमावस को यहाँ काफ़ी तादाद में लोग दर्शन और स्नान के लिये आते हैं। सोमवती अमावस को यह भीड़ बहुत बढ़ जाती है। नैमिषारण्य की छोटी परिक्रमा क़रीब २ कोस की और बड़ी ८४ कोस की है। (ब्रज की परिक्रमा भी ८४ कोस की है।) बड़ी परिक्रमा में नैमिषारण्य, मिश्रिक तथा हत्याहरण के जितने भी खास और देखने योग्य तीर्थ-स्थान हैं, सभी आ जाते हैं। फाल्गुन की अमावस को नैमिष से परिक्रमा उठती है, और पूर्णिमा तक इसी स्थान पर आकर समाप्त हो जाती है। मुझे तो यह परिक्रमा करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, लेकिन मेरे पिताजी के एक मित्र ने यह परिक्रमा की थी। उनका कहना है, इस यात्रा में किसी प्रकार का विशेष कष्ट नहीं होता। दूकानदार भी अपनी-अपनी चलती-फिरती दूकानें लिए बढ़ते रहते हैं, इसीलिये जरूरत की हरएक चीज़ आसानी से मिलती रहती है। काफ़ी भीड़ रहती है, इससे किसी तरह का डर भी नहीं होता, और तबियत भी लगती रहती है। अमीर लोग बैलगाड़ियाँ आदि कर लेते हैं, और साथ में तंबू-क़नात आदि का भी प्रबंध रहता है।

चौरासी कोस की परिक्रमा का ब्यौरा इस तरह है। मिश्रिक से स्नान करके परिक्रमा शुरू करनी चाहिए। परेवा को कोरौना या कोरौना-तीर्थ पर रहे। दुइज को हरैया जाकर गोमती में स्नान करे। तीज को नगवा जाकर हत्याहरण में स्नान करे।

चौथ को औदुंबर-ग्राम में रहे। पंचमी को सरिवा में जाकर गंगा-सागर में स्नान करे। छठ को देवगवाँ (देवप्रयाग) में स्नान करे। सप्तमी को पड़ेरुवा में जाकर मान-सरोवर में स्नान करे। फिर बाल्मीकि-आश्रम जाकर मंडरीक जाय। अष्टमी को जरिगवाँ में हरिद्वार-तीर्थ के दर्शन और वज्र से भेंट करे। नवमी को कोटेश्वर में स्नान करके नैमिषारण्य में ललितादेवी आदि के दर्शन करे। दशमी को बदरी-केदार आदि स्थानों के दर्शन करे। एकादशी को चितवा-ताल में जाकर स्नान करे। कहते हैं, फाल्गुन की शुक्ल परेवा से दशमी तक देवताओं ने यहाँ की परिक्रमा की थी। फिर एकादशी से पूर्णमासी तक यहाँ रहे, और होली के दिन दधीचि-कुंड में स्नान करे। कहते हैं, यहाँ तीन करोड़ पचास लाख तीर्थ वास करते हैं।

होली पर मिश्रिक में बड़ी भीड़ होती है, और बहुत बड़ा मेला होता है। लाखों यात्री आते हैं, और तिल धरने की भी जगह नहीं रह जाती। इस अवसर पर मुझे यहाँ आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अपने पुत्र की एकमानता के सिलसिले में मुझे आना पड़ा था। यों तो इसस्थान पर ५-६ बार आ चुका हूँ। यद्यपि मिश्रिक में भी कई धर्मशालाएँ हैं, कुछ दधीचि-कुंड के चारों ओर और कुछ बस्ती में और पंडों के यहाँ भी लोग रहते हैं, लेकिन फिर भी रहने की दिक्कत यहाँ रहती है। रोग फैलने का डर भी रहता है, और रोग फैल भी जाता है।

धार्मिक महत्त्व—शंख-स्मृति में लिखा है कि यहाँ पितरों को पिंड देने से बड़ा फल होता है। व्यास-स्मृति के अनुसार यहाँ आनेवाले मनुष्य जन्म-जन्मांतरों के पापों से छुटकारा पा जाते हैं। महाभारत के आदिपर्व में भी इस स्थान का वर्णन है। गरुड़-पुराण, अग्नि-पुराण आदि में भी इसके माहात्म्य का वर्णन है। महाभारत के वनपर्व के अनुसार यहाँ देवताओं, ब्रह्माजी और सब तीर्थों का निवास है। यह देवताओं की यज्ञ-भूमि कही गई है। नैमिषारण्य के नामकरण की कथा बड़ी रोचक है। कूर्म-पुराण, पद्म-पुराण और देवी-भागवत आदि में इसके नामकरण की कथा है। कहते हैं, एक बार सब ऋषि ब्रह्माजी के पास गए, और उनसे पूछा—"महाराज, तपस्या के लिये सबसे उत्तम भूमि कौन है?"

ब्रह्माजी ने कहा—"मैं अपना चक्र छोड़ता हूँ। तुम लोग इसके साथ जाओ। जिस स्थान पर इसका नेमि (पहिया) गिरे, वही स्थान तपस्या करने योग्य जानना।"

नेमि के गिरने से ही इसका नाम नैमिष पड़ा। शल्यपर्व में लिखा है—नैमिष नाम के एक महाप्रतापी ऋषि थे। उन्होंने यहाँ द्वादशवर्षीय एक महायज्ञ करना आरंभ किया। असंख्य ऋषि-मुनि इसमें भाग लेने आए। तभी से इस स्थान का नाम नैमिषारण्य पड़ गया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नैमिषारण्य के धार्मिक महत्त्व का वर्णन अनेक धर्म-ग्रंथों में है।

हम लोग पहले मिश्रिक ही आए थे। यहाँ की बस्ती स्टेशन से २ फर्लांग है। यहाँ से नैमिषारण्य सिर्फ पाँच मील है। यह स्थान भी बहुत सुंदर है, लेकिन मुझे मिश्रिक से नैमिष ही ज़्यादा पसंद आया। यद्यपि मिश्रिक एक बहुत बड़ा क़स्बा—नैमिषारण्य से बड़ा—है, और यहाँ की आबादी भी नैमिष से ज़्यादा है, लेकिन जो अपूर्व शांति हृदय को नैमिषारण्य में होती है, वह यहाँ नहीं। यद्यपि प्रकृति के दृश्यों की कमी यहाँ भी नहीं है, देव-मंदिरों की भी संख्या काफ़ी है, लेकिन यहाँ चहल-पहल ज़्यादा है। यहाँ का बाज़ार बहुत बड़ा है, जिसमें ज़रूरत और सुख की प्रायः सभी चीज़ें मिल सकती हैं। कच्चे मकानों के अलावा यहाँ पक्के और दुमंज़िले मकान भी बहुत हैं। डॉक्टर, वैद्य, वक़ील आदि सभी यहाँ हैं। कचहरी, पुलिस-स्टेशन, पोस्ट-ऑफ़िस, तहसील, अस्पताल और स्कूल भी यहाँ हैं।

तहसील के आस-पास भी कुछ स्थान देखने योग्य हैं। तहसील बस्ती से क़रीब ४-५ फ़र्लांग है—

(१) बाँकेबिहारीजी की धर्मशाला और मंदिर। इसके मालिक पं० रामभजन पांडेय ८२ वर्ष के वृद्ध सज्जन हैं। यह सज्जन बहुत प्रेम-पूर्वक वार्तालाप और अतिथि-सत्कार करते हैं।

(२) महावीर-गुफा—एक कमरा है। उसके नीचे एक गुफा में महावीरजी हैं। और, एक उसी से कुछ नीची गुफा

में एक और महावीरजी की मूर्ति है। दिया के सहारे उनके दर्शन किए।

(३) सीता-रसोई और महावीरजी के दो छोटे-छोटे मंदिर हैं—एक ही चबूतरे पर। महावीरजी की काफ़ी बड़ी मूर्ति है। काले रंग का अहिरावण वह अपने पैरों के नीचे दबाए थे। कहते हैं, पाताल जाते समय महावीरजी इसी मार्ग से गए थे। एक ९० वर्ष के वृद्ध बाबा यहाँ थे। बड़े प्रेम से वह कश्यप ऋषि की कथा सुनाते रहे।

(४) सीता-कूप—इस कुएँ का पानी बहुत ठंडा और मीठा है। यह एक पक्का, छोटा कुंड-सा है। चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ हैं। पर जल उसका गंदा तथा हरा था। कुंड के चारों ओर बहुत छोटे-छोटे ३-४ मंदिर हैं। एक महादेवजी का भी है।

चोरों का यहाँ बहुत डर है। बंदरों की भी अधिकता है। ये बातें युक्त प्रांत के प्रायः सभी तीर्थ-स्थानों में थोड़ी-बहुत हैं। होली के दिन थे, अतः खचाखच रेलगाड़ियाँ भरी हुई आती थीं। हम लोग दधीचि-कुंड पर स्थित अपने पंडे के घर में ठहरे, जहाँ से बैठे-बैठे मेले का दृश्य दिन-रात देखा करते थे। स्टेशन से कुछ फर्लांग पर ही कुंड है। हजारों की संख्या में लोग दधीचि-कुंड की सीढ़ियों पर सोकर रात बिताते थे, क्योंकि धर्मशालाएँ और पंडों के मकान पचास-साठ हजार यात्रियों की भीड़ को स्थान नहीं

दे सकते थे। सरकार की ओर से काफ़ी प्रबंध था। पुलिस, सेवा-समिति आदि का अच्छा प्रबंध था। तहसीलदार का कैंप वहीं था। डिप्टी कलेक्टर साहब बराबर वहाँ दौरा किया करते। सरकार की ओर से मेले के डॉक्टर भी थे। मिश्रिक यों भी सीतापुर-ज़िले में तहसील और परगने का सदर मुक़ाम है। यह बहुत पुराना क़स्बा है, और बहुत प्रसिद्ध पुराना तीर्थ-स्थान है।

मिश्रिक में सबसे प्रसिद्ध स्थान दधीचि-कुंड है। इसकी उत्पत्ति तथा नामकरण की कथा भी बड़ी रोचक है। देवताओं और दैत्यों से हमेशा लड़ाई होती ही रहती थी। देवता हारते-हारते व्याकुल और निराश हो गए थे। अंत में ब्रह्मा-जी की शरण में जाकर उनकी बड़ी स्तुति तथा प्रार्थना की। उन्होंने सलाह दी कि तुम महर्षि दधीचि के पास जाओ। अगर वह अपनी हड्डियाँ तुम्हें दे दें, तो उनसे वज्र बनेगा। उसी वज्र से वृत्रासुर आदि का वध होगा। देवता और सप्तर्षि आदि दधीचि के पास पहुँचे, और उनसे उनकी हड्डियाँ माँगीं। दधीचिजी ने परोपकार-भाव से प्रेरित होकर अपनी हड्डियाँ देना स्वीकार किया। उन्होंने कहा—"संपूर्ण तीर्थों में स्नान करके मैं तुम्हें दान दे सकूँगा।" देवताओं ने संपूर्ण तीर्थों का जल इकट्ठा किया। कहते हैं कि सब तीर्थ आए, पर प्रयाग नहीं आया। इससे देवताओं ने वहाँ एक स्थान 'पंच-प्रयाग'-नामक स्थापित किया। यह स्थान ललिता

देवी के निकट है। महामुनि ने वहाँ स्नान किया, और गाय से अपने शरीर को चटाकर शरीर छोड़ा। उनकी हड्डियों से विश्वकर्मा ने वज्र बनाया, और उससे राक्षसों का नाश हुआ।

दधीचि कुंड (मिश्रिक का ताल)

इनकी हड्डियों में इतनी अपूर्व शक्ति कैसे आई कि उनका वज्र बन सका, इसकी भी कथा बड़ी रोचक है। कहते हैं, जब परशुरामजी का सीता स्वयंवर के पश्चात् मान भंग हुआ, तो वह अपना बाण दधीचि को देकर तपस्या करने चले

गए, और उन्हें यह आदेश दे गए कि मृत्यु-पर्यंत मेरे बाण की रक्षा करना। दधीचि ने बाण का खो जाने से बचाने के लिये एक उपाय सोचा। वह बाण को घोटकर पी गए। उसी से उनकी हड्डियाँ वज्र बनाने के योग्य हुईं।

जिस कुंड में महर्षि ने स्नान किया था, उसका नाम दधीचि-कुंड पड़ा, और अनेक तीर्थों का मिश्रित जल उस स्थान पर लाया गया था, इससे उस पुण्य-क्षेत्र का नाम मिश्रिक रक्खा गया। कहते हैं, दधीचिजी को संदेह हुआ कि सब तीर्थ आए भी हैं या नहीं, इस पर सब तीर्थों ने स्वयं अपने-अपने नाम बतलाए। स्कंद-पुराण में इसका पूरा वर्णन है।

दधीचिजी की कथा बड़ी रोचक है। कन्नौज में दधीचि नाम के एक बहुत प्रसिद्ध सूर्य-वंशी राजा हुए। वह बहुत वीर और बली थे। बहुत दिनों तक राज्य करने के बाद उनके हृदय में परलोक का विचार आया। राज्य त्यागकर वह काशी आए। वहाँ वह बाबा विश्वनाथ के दर्शन तथा गंगा-स्नान करते। एक दिन स्नान करते समय इन्हें खाँसी आई, और गंगा-जल में कफ गिर पड़ा। वह बहता हुआ एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ एक क्वाँरी कन्या स्नान कर रही थी। वह कफ को खाके में पी गई, और शाप-वश उसी से गर्भ-वती हो गई। कन्या को जब अपने गर्भ की बात मालूम हुई, तो उसने शाप दिया कि जिससे यह गर्भ रहा हो, वह कोढ़ी

हो जाय। तब से दधीचि कोढ़ से पीड़ित हुए। उन्होंने शिवजी की बहुत प्रार्थना की, और उन्हीं के आदेशानुसार 'सारस्वत'-नामक तीर्थ की ओर चले। इस तरह दधीचि नैमिषारण्य-मिश्रिक को आए।

कुंड बहुत काफ़ी लंबा-चौड़ा और पक्का है। चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। कुंड काफ़ी नीचे पर है, और बहुत गहरा है। कुंड के ऊपर बैठने के लिये चारों ओर पक्के चबूतरे बने हैं। उसके चारों ओर एक पक्की सड़क है। चारों ओर पक्के मकान हैं, और कुंड के ऊपर इधर-उधर पेड़ भी लगे हैं। किनारे पर बहुत-से देव-मंदिर हैं। लोगों का कहना है, महाराजा विक्रमादित्य ने इस कुंड को पक्का करवाया। बाद में महारानी अहल्याबाई ने इसकी सीढ़ियों और घाटों का जीर्णोद्धार कराके पक्का बनाया। सबसे प्रसिद्ध मंदिर कुंड के किनारे दधीचिजी का है। मंदिर बहुत विशाल और सुंदर है।

कुंड पर बहुत आनंद आता था। सबेरे भीड़ की अधिकता के कारण स्नान करना कठिन हो जाता था। शाम को भी अपूर्व दृश्य होता था। रात को कहीं गाना-बजाना होता था, कहीं पटाखे छूटते थे, कहीं कीर्तन होता था। लोग दिए जलाकर जल में बहाते और फूलों की मालाएँ चढ़ाते थे। उस समय कुंड की शोभा बहुत रमणीय हो जाती थी।

होली के दिन यहाँ मिश्रिक की परिक्रमा होती है। परिक्रमा

पंचकोसी है। हाथी, ऊँट, घोड़े, सभी इस मेले में दिखाई देते हैं। हजारों लोग परिक्रमा करते हैं। हम लोग भी परिक्रमा करने लगे। बूट और गन्ने के खेतों को देखते और गन्ना तथा बूट खाते हम लोग बढ़ते गए। मार्ग पूछने की जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि मनुष्यों का ताँता लगा हुआ था गर्द खूब उड़ रही थी, लेकिन सरदी की ऋतु होने के कारण धूप विशेष नहीं खलती थी। बीच-बीच में देव-मंदिर पड़ते थे। पहले एक हनुमान्‌जी का मंदिर है। बस्ती के पास भी एक महावीरजी का मंदिर है। एक टीला भी पड़ता है, जिस पर एक देव-मंदिर है। पास ही एक कुंड है। यह स्थान 'चित्रकूट' कहलाता है। चतुर्भुजी देवी के दर्शन भी मार्ग में किए। प्रायः ३-४ घंटे परिक्रमा में लगे। बच्चों का साथ था। परिक्रमा जब पूरी हो गई, और कुंड क़रीब १॥-२ फर्लांग ही रह गया, तब एक दुर्घटना हो गई। मेरी बड़ी बहन अपनी दो वर्ष की लड़की के साथ, हम लोगों के साथ से छूट गईं—बड़ी कठिनाई और परेशानी से मिलीं। मिश्रिख के पेड़े और चुड़वे प्रसिद्ध हैं। चुड़वे तो बहुत बड़े-बड़े होते हैं।

यहाँ से लोग हत्याहरण जाते हैं। यह मिश्रिख से प्रायः १० मील होगा। कहते हैं, यहाँ स्नान करने से लोगों का हत्या का पाप छूट जाता है। जिनके पुत्र नहीं जीते, वे अगर यहाँ स्नान करें, तो, कहा जाता है, उनके पुत्र जीवित रहते हैं। यहाँ अनेक

कुष्ठ-रोग से पीड़ित मनुष्य आते हैं। और, उनका विश्वास है कि यहाँ स्नान करने से इस भयंकर रोग से छुटकारा मिल जाता है। यहाँ का कुंड काफ़ी बड़ा है। भादों के महीने-भर यहाँ बड़ा भारी मेला होता है, और लाखों यात्री यहाँ आते हैं। यों तो सदा ही यहाँ यात्री आते-जाते रहते हैं। शिव-पुराण में लिखा है कि रामचंद्रजी पर रावण के मारने से ब्रह्महत्या का पाप लगा। हत्याहरण में स्नान करके उन्होंने अपने भाई-समेत उस पाप से छुटकारा पाया। वहीं उन्होंने शिव-लिंग स्थापित किया।

होली का पर्व इस पवित्र तीर्थ में बिताकर हम लोग लखनऊ लौट आए।

मथुरा

मुझे ब्रज से विशेष प्रेम है। न-जाने क्यों ब्रज का नाम-मात्र सुन लेने से ही मेरा मन-मयूर नाच उठता है। बिहारी का यह अमर दोहा सदा मेरी जिह्वा पर रहता है—

"सघनकुंज-छाया सुखद, सीतल, सुरभि-समीर;
मनु ह्वै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर।"

कम-से-कम दस-बारह बार तो ब्रज हो आया हूँ, किंतु वहाँ जाने की इच्छा कभी भरती ही नहीं। भरेगी या नहीं, कौन कह सकता है? अन्य स्थानों पर जाने से वहाँ के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है, और यह स्वाभाविक भी है, किंतु यहाँ के लिये वैसा नहीं होता। सच ही है, तीन लोक से मथुरा न्यारी। ब्रज-भूमि में जाने का सौभाग्य मुझे होली, दिवाली, दशहरा, रामनवमी और जन्माष्टमी पर हुआ है। श्रावण में भी गया हूँ, और गर्मी, वर्षा और शरद्, तीनो ही ऋतुओं में ब्रज के सौंदर्य का अवलोकन कर चुका हूँ। मथुरा नगरी अपना ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक महत्त्व रखती है, किंतु नगर तथा व्यापार आदि की दृष्टि से वर्तमान समय में बहुत उच्च स्थान नहीं पा सकती। यों तो आखिर वह नगर ही है। मेरे कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि

करील के कुंजों, कदंब के वृक्षों यमुना-पुलिन और भगवान् की केलि-भूमि होने के नाते जो आकर्षण, सौंदर्य और सौभाग्य व्रज-भूमि को प्राप्त है, वह भारत के किसी भी स्थान को प्राप्त नहीं है।

व्रज पर अनेकों पुस्तकें तथा काव्य लिखे जा चुके हैं, किंतु प्रस्तुत लेख एक दूसरे ही दृष्टि-कोण से लिख रहा हूँ। संभव है, जिस लक्ष्य को सामने रखकर मैं यह लेख लिख रहा हूँ, वह पाठकों को उपयुक्त और सुखद जान पड़े। मैंने ऊपर लिखा है कि मैं प्रायः प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक त्योहार पर व्रज गया हूँ। प्रस्तुत लेख किसी विशेष समय की यात्रा पर न लिखकर प्रत्येक समय की यात्राओं का कुछ अंश लेकर लिख रहा हूँ। मेरा उद्देश्य इसमें यह है कि व्रज में किस त्योहार पर या किस ऋतु में क्या आनंद आता है, और व्रज के किस भाग में कौन उत्सव अत्यंत मनोमोहक रूप से मनाया जाता है।

व्रज-भूमि चौरासी कोस के घेरे में है, और व्रज-भूमि-भर में जो प्रसिद्ध स्थान हैं, उनका अलग-अलग वर्णन किया जायगा।

मथुरा की शोभा यों तो इसके मंदिरों और घाटों के कारण सदा ही अलौकिक रहती है, किंतु जो शोभा श्रावण के महीने में होती है, वह वर्णनातीत है। मुझे श्रावण-मास में मथुरा जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मथुरा मुख्यतः अपने मंदिरों के लिये प्रसिद्ध है। मथुरा के मुख्य मंदिर निम्न-लिखित हैं—

१. श्रीगोविंददेवजी का मंदिर (द्वारकाधीश के निकट)—इसमें संस्कृत-पाठशाला भी है।

२. श्रीकिशोरीरमणजी का मंदिर (गऊ-घाट पर)-किशोरीरमणजी ने अपने नाम पर एक हाईस्कूल तथा एक कन्या-पाठशाला भी खुलवाई है।

३. श्रीगोपीनाथजी का मंदिर (डोरी बाज़ार में)

४. श्रीजानकीजीवनजी का मंदिर (घिया मंडी बाज़ार में)

५. श्रीगोवर्द्धननाथजी का मंदिर (स्वामी-घाट पर)—इसका पत्थर का काम अच्छा है।

६. श्रीविहारीजी का मंदिर (गोविंददेव के मंदिर के निकट)

७. श्रीराधेश्यामजी का मंदिर

८. असकुंडा-घाट पर हनुमान्‌जी, ९. नृसिंहजी, १०. वाराहजी, ११. गणेशजी आदि के मंदिर, १२. बलदेवजी का मंदिर (केसरवार बाज़ार में)

१३. राधाकांतजी का मंदिर

१४. गतश्रम नारायण का मंदिर (विश्राम-घाट के निकट)

१५. वाराहजी का मंदिर (द्वारकाधीश के मंदिर के पास)

१६. सीतारामजी का मंदिर (घिया मंडी पर)

१७. मथुरानाथ का मंदिर

१८. ब्रजगोविंद का मंदिर

१९. राधाकृष्ण का मंदिर नंबर (१)

२०. राधाकृष्ण का मंदिर नंबर (२)

२१. अन्नपूर्णाजी का मंदिर

२२. श्रीरामजी का मंदिर (रामजी द्वारे में)

२३. कंस-निकंदन का मंदिर (होली दरवाजे पर) आदि।

२४. मदनमोहन और छोटे दाऊजी का मंदिर—यह अत्यंत प्रसिद्ध है। यह बंगाली घाट पर है, और वल्लभाचार्य-कुलवालों के पास है। मदनमोहनजी के मंदिर से मिला ही छोटे दाऊजी का मंदिर है। अब तो यह अत्यंत सुंदर पत्थर का बन गया है।

२५. मथुरा का सबसे प्रसिद्ध मंदिर द्वारकाधीश का है। यह सेठ गोकुलदास पारखी का बनवाया हुआ है। असकुंडा-घाट के सामने यह है। मथुरा के मुख्य बाजार में यह मंदिर है। इसमें निश्चित समय पर दर्शन होते हैं—चार बार दिन में और चार बार रात में।

मंदिर की छत के नीचे और चारों ओर बहुत सुंदर चित्रकारी है। वल्लभाचार्य के जितने भी वंशज हो चुके हैं, उनके चित्र तथा भारतवर्ष में वैष्णव-संप्रदाय के जितने भी मुख्य मंदिर हैं, उनकी मूर्तियों के चित्र, भगवान्

कृष्ण की लीलाओं के संपूर्ण चित्र तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों के चित्र हैं। उत्सवों पर रात्रि के समय झाड़-फानूस के
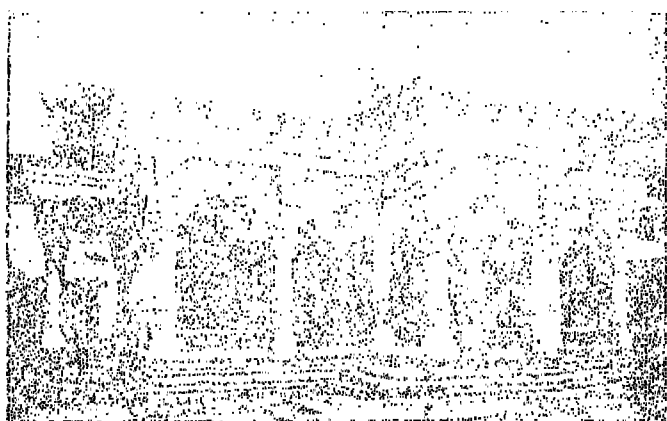
श्रीद्वारकाधीशजी का मंदिर

अंदर से होता हुआ जब बिजली का प्रकाश चारों ओर फैलता है, तब मंदिर की शोभा अपूर्व होती है। सीढ़ी से चढ़ने के पश्चात् मंदिर के बीचोबीच में एक लंबा-चौड़ा और ऊँचा चबूतरा है, जिस पर दर्शकगण बैठकर दर्शन करते हैं। दर्शन का क्रम यह होता है—(प्रत्येक दर्शन प्रायः १० मिनट खुला रहता है)—

(१) मंगला के ६ बजे, (२) ग्वाल के ६ बजे, (३) श्रृंगार के १० बजे, (४) राजभोग के ११ बजे दिन को होते हैं। वैसे ही रात को (१) उत्थापन के ५ बजे, (२)

संध्या-आरती के ६-७ बजे, (३) भोग के ७-८ बजे, (४) शयन के १० बजे रात्रि को होते हैं, फिर पट बंद हो जाते हैं। यह मंदिर कांकरोली के गोस्वामियों के पास है। लक्ष्मी जैसे यहाँ बहती हैं। एक बड़े कमरे में खज़ाना है। आमदनी एक तो भेंट से होती है। हज़ारों रुपए साल में भक्तगण चढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त कई गाँव मंदिर के खर्च के लिये लगे हैं। मंदिर की ओर से होम्योपैथिक तथा आयुर्वैदिक चिकित्सालय भी हैं और एक संस्कृत-पाठशाला भी। मंदिर के एक ओर प्रसादी बनाने का प्रबंध है। मंदिर में कबूतर बहुत पले हैं। मंदिर की शोभा अन्नकूट और श्रावण के दिनों में तथा अन्य प्रधान उत्सवों पर अत्यधिक होती है। यहाँ साधुओं को भोजन मिलता है, और रात-दिन हरि-कीर्तन हुआ करता है। नाम-कीर्तन के अतिरिक्त प्रातःकाल और रात्रि के समय श्रीमद्‌भागवत का पाठ भी नित्य हुआ करता है। मुझे भी एक दिन भागवत सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बात यह हुई कि जैसे ही मैं मंदिर में पहुँचा, शृंगार के दर्शन समाप्त हो चुके थे। मैंने सोचा, अब पालने के दर्शन करके ही जाऊँगा। जब तक बैठे-बैठे कथा ही सुनूँ। व्यासजी पत्थर के खंभे का सहारा लिए बैठे थे। श्रोतागणों में अनपढ़ और वृद्ध स्त्रियों की ही संख्या अधिक थी। दो-चार वृद्ध पुरुष भी बैठे थे। स्त्रियाँ तो बराबर आपस में बातें करती जाती थीं—कथा की ओर

उनका ध्यान न था। किंतु कथा में बैठने के पुण्य की तो वे भागी थी हीं। बीच-बीच में व्यासजी जब कहते थे—"बोलो एक बार श्रीराधारमणलालजी की जय," "बोलो श्री-शिवशंकरजी की जय" आदि, तब जैसे सोते से सभी चौंककर व्यासजी के कंठ से कंठ मिलाकर उत्साह-पूर्वक "जय" कह देते थे, और फिर सब अपने-अपने काम में लग जाते थे—व्यासजी कथा बाचने में और स्त्रियाँ बात-चीत करने में।

उस दिन कथा का प्रसंग था—"शिवजी बड़े भोले हैं, और विष्णुजी अपने भक्तन कों खूब परख लेय हैं, तब वाको वर देय हैं। महादेवजी को रिस भी शीघ्र आय जाय है, और प्रसन्न भी शीघ्र होय जाय हैं।" यही बात व्यासजी घंटा-भर तक दोहराते थे। कभी दो-चार शब्द वाक्य के बदलकर कह देते थे—कभी पूरा वाक्य-का-वाक्य वही कह देते थे। घुमा-फिराकर वही बात, वही दृष्टांत, वही विषय कहा जाता था। भँवर में पड़ी हुई वस्तु जैसे चल-फिरकर भी नहीं चलती, वही हाल क़था का भी थ॥

किंतु एक बात अवश्य माननी पड़ेगी। व्यासजी के कहने का ढंग इतना मनोमोहक और आकर्षक था कि श्रोतागणों की तबियत नहीं ऊबती थी। ज्यादा पढ़-लिख जाने से समालोचना करने की प्रवृत्ति पड़ जाने पर

मनुष्य छिद्रान्वेषी हो ही जाता है। उसके हृदय की कोमलता, प्रेम और श्रद्धा उसके समालोचन के आगे दब जाती है। किंतु मुझे भी उस कथा में वह रस और प्रेम का आभास मिला कि मैं भी मंत्र-मुग्ध की भाँति बैठा सुनता रहा। इच्छा होती थी कि सुने ही जाऊँ। इसका कारण कथा द्वारा ज्ञान की कोई विशेष बात या साहित्यिक चर्चा न था, वरन् व्यासजी के कहने का आकर्षक ढंग (style) था। ब्रजभाषा के प्रयोग से कथा सुनने में मधुरतर बन गई थी। मुझे भागवत सुनने का अवकाश कई बार प्राप्त हुआ है। एक बार एक व्यासजी से मैंने कहा भी—"पंडित-जी, कथा को आकर्षक बनाने का प्रयत्न आप अधिक करते हैं। उदाहरण, चुटकुले और out of point बहुत-सी बातें आप कहते हैं। इससे मनोरंजन भले ही कम पढ़े मनुष्यों का हो, किंतु समझदारों को आत्मिक और मानसिक संतोष आपकी कथा से नहीं होता।" व्यासजी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"आप गलत नहीं कह रहे हैं। यदि कृष्ण के जीवन और भागवत की philosophy (दर्शन और वेदों की बातें) तथा साहित्यिक व्याख्या और खूबियाँ बताते हुए हम चलें, तो दूसरे दिन आपने आज जितने श्रोता देखे हैं, उनमें से एक भी न देखें। "अंधे के आगे रोवे अपने नैना खोवे। यह कथा हम अपने पेट के लिये कहते हैं—यह हमारा business है—हमें सभा के मनुष्य

को देख-समझकर उसी के अनुसार कथा कहनी पड़ती है।" उत्तर ठीक था—मैं चुप रहा। अस्तु।

मंदिर के नीचे एक बाजार है, जिसमें प्रसादी बिकती है। =) या ।) की कच्ची या पक्की पत्तल खरीदी जा सकती है, जो एक आदमी के लिये बिलकुल काफी होती है। मंदिर के सेवकों का हिस्सा उन्हें मिल जाता है, और वे अपना हिस्सा बेच लेते हैं। मैं तो जब मथुरा जाता हूँ, प्रसादी ही मोल लेकर खाता हूँ। क्या आनंद आता है। यमुना के किनारे पानी में पैर डालकर बैठ जाइए—कछुओं का, दूर पर नहानेवालों का और जल-तरंगों का आनंद लेते जाइए, और खाते जाइए। मेरा सिद्धांत है, यदि दिहात में जाओ, तो बिलकुल दिहाती बन जाओ—तभी तुम दिहात का आनंद उठा सकोगे, और खुश हो सकोगे। अपने बाबूपन और नागरिकता को थोड़े दिन भूल जाइए। वैसे ही धार्मिक स्थान पर जाकर समालोचनात्मक बुद्धि को दूर करें, प्रेमोद्गार लेकर तीर्थ में विचरण कीजिए, फिर देखिए, क्या स्वर्गीय आनंद आता है।

मथुरा की परिक्रमा भी बहुत प्रसिद्ध है। परिक्रमा करने से मथुरा के आस-पास के और दूर के जितने मंदिर हैं, प्रायः सभी यात्रा में आ जाते हैं। मुझे भी पंचकोसी परिक्रमा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रत्येक एकादशी और अक्षयनवमी को मथुरा की परिक्रमा होती है। मार्ग पूछने की आवश्यकता

नहीं पड़ती, क्योंकि इतने अधिक मनुष्य एक साथ परिक्रमा करते हैं कि मनुष्यों की ही लकीर बन जाती है। विश्राम-घाट से परिक्रमा उठती है। मार्ग में गतश्रम नारायण का
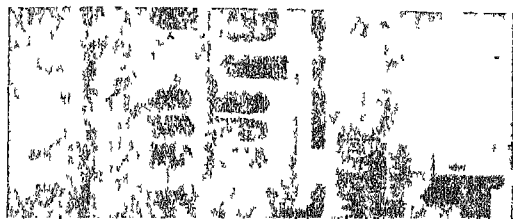
विश्राम-घाट

मंदिर, कंसखार, सती का बुर्ज, चर्चिकादेवी, योग-घाट, पिप्पलेश्वर महादेव, योगमार्ग बटुक, प्रयाग-घाट, वेणीमाधव

का मंदिर, श्याम-घाट, श्यामजी का मंदिर, दाऊजी, मदन-मोहनजी, बंगाली घाट, गोकुलनाथजी का मंदिर, कनखल-तीर्थ, विदुर-तीर्थ, सूर्य-घाट, ध्रुव-क्षेत्र, ध्रुव-टीला, सप्तर्षि-टीला, कोटितीर्थ, रावण-टीला, बुद्ध-तीर्थ, बलि-टीला, वखन-टीला, सत्यनारायण, जगन्नाथ, बद्रीनारायण, रंग-भूमि, कुवलयापीड़ - स्थान, धनुष-भंग - स्थान, चाणूर-मुष्टिक-वध-स्थान, कंस-टीला, पातालदेवी, भूतेश्वर, रंगेश्वर, शिव-सप्त समुद्र-कूप, शिव-ताल, बलभद्र-कुंड, पातरा-कुंड, ज्ञानवापी, जन्मभूमि, केशवदेव का मंदिर, कृष्ण-कूप, कुब्जा-कूप, कंस का क़िला, सप्तर्षि, चामुंडादेवी, महादेवी, सरस्वती-नाला, सरस्वती-कुंड, सरस्वती - मंदिर, उत्तर - कोटि तीर्थ, गणेश - तीर्थ, गोकर्णेश्वर शिव, गौतमर्षि की समाधि, सेनापति का घाट, सरस्वती - संगम, दशाश्वमेध-घाट, अंबरीष का टीला, चक्रतीर्थ, कृष्ण - गंगा, कालिंजर महादेव, सोमतीर्थ, गौघाट, घंटाकर्ण, मुक्तितीर्थ, ब्रह्मघाट, वैकुंठघाट, धारापतन, वसुदेव-घाट, प्राचीन विश्राम-घाट, असिकुंडा, वाराह-क्षेत्र, द्वारकाधीश का मंदिर, मणिकर्णिका - घाट, महाप्रजावैद्य गार्गी सार्गी तीर्थ आदि । इनके अतिरिक्त और छोटे-छोटे बहुत कुंड और मंदिर तथा मूर्तियाँ आदि पड़ीं। मेरे साथ मथुरा ही के निवासी एक मित्र थे—वह मुझे ज़रा-ज़रा हाल बताते रहे, और पूर्ण परिक्रमा कराई। यद्यपि उस दिन आधी परिक्रमा

कर चुकने के पश्चात् मूसलधार पानी गिरा, एक स्थान पर मार्ग भूलकर भटक भी गए थोड़ा, किंतु बड़ा अच्छा मार्ग का दृश्य था। रास्ते-रास्ते पंडे पैसा माँगते थे। आगरा और मथुरा में कुछ नीच जाति की स्त्रियाँ बड़े विचित्र और बेशर्मी के ढंग से भीख माँगती हैं। एक औरत यह कहकर भीख माँग रही थी—"तेरी ऐनक पर मर जाऊँ—तेरी जोड़ू बन जाऊँ।"

सायंकाल के समय विश्रामघाट की आरती के दर्शन किए। आरती के समय बड़ी भीड़ घाट पर होती है, और घाट की शोभा बहुत बढ़ जाती है। एक ऊँचे, पक्के, छोटे चबूतरे पर एक पंडा बहुत बड़ी आरती लेकर यमुनाजी की आरती करता है। दर्शक घाट या नाव पर से आरती करते हैं। गायों को भोजन कराते हैं। कछुओं को चने खिलाते हैं। यमुनाजी में दिए जलाकर या फूल के दोने बहाते हैं। स्थान-स्थान पर कथा होती है। लोग घाटों पर बैठे यमुनाजी का आनंद लेते या उस पार जाकर घूमते हैं। मथुरा की शोभा यमुनाजी और उनके घाटों से है। मथुरा की ठीक शोभा देखना हो, तो प्रातःकाल और सायंकाल यमुना के पुल से देखें।

यमुनाजी के उस पार, कोई दो फर्लांग पर, दुर्वासा ऋषि का मंदिर है। मार्ग हरे-हरे खेतों के बीच से होकर है। मंदिर बहुत ऊँचे टीले पर है, जिसके ऊपर से यमुना-

नदी तथा चारों ओर का दृश्य अत्यंत रमणीक दिखाई देता है।

मथुराजी में २४, २५ प्रसिद्ध घाट हैं, जिनमें से स्वामी-घाट, बंगाली-घाट, असकुंडा-घाट, कृष्ण-गंगा-घाट और विश्रामघाट अत्यंत प्रसिद्ध हैं। विश्रामघाट तो मथुरा का सर्वस्व है। भगवान् कृष्ण ने कंस को मारकर यहीं विश्राम किया था। कई बार कई राजा यहीं सोने से अपना तुला-दान करवा चुके हैं। भाई-दुइज के दिन तो इस घाट पर भाई-बहन साथ-साथ हाथ पकड़कर नहाते हैं। इसका बड़ा माहात्म्य है। उस दिन इतनी भीड़ होती है कि पुलिस कोठों पर बैठकर प्रबंध करती है। यहीं प्रसिद्ध यमराज का मंदिर है। कहते हैं, भाई-दुइज को जो भाई-बहन यहाँ नहाते हैं, वे यमराज के चंगुल से छूट जाते हैं। यमुनाजी यम की बहन हैं।

मथुरा में अन्य दर्शनीय वस्तुएँ ये हैं—

(१) म्यूज़ियम—इसमें पत्थर की अति प्राचीन (ज़मीन से निकली हुई) मूर्तियाँ रक्खी हैं।

(२) विक्टोरिया और हैंपियर-पार्क

(३) यमुना-बाग़—यह होली दरवाज़े से ३-४ मील होगा। यह अत्यंत सुंदर और आकर्षक है।

(४) द्वारिकाधीश के मंदिर के आगे नगर के बीचो-बीच में गांधी-पार्क भी अत्यंत सुंदर है।

(५) कंस का क़िला—गऊ-घाट पर है। कहते हैं, यह द्वापर का बना है।

(६) भरतपुरवाले राजा का महल—असकुंडा-घाट पर।

(७) सेठ लक्ष्मीचंद की हवेली—द्वारकाधीश के मंदिर के सामने।

(८) जुमा मसजिद—नगर के बिलकुल बीचोबीच में है, और बहुत बड़ी है।

(९) सती का बुर्ज—बंगाली-घाट पर।

(१०) इसके अतिरिक्त सुख-संचारक कंपनी, मथुरा की अति प्राचीन तथा बड़ी दूकान है। क्षेत्रपालजी का बनवाया घंटाघर और लाइब्रेरी भी बाजार में है।

(११) हार्डिंग गेट या होली दरवाजा—इसकी पत्थर की नक़ाशी दर्शनीय है। [मथुरा में चार गेट हैं—होली दरवाजा, वृंदावन दरवाजा, डीग दरवाजा और भरतपुर दरवाजा। यद्यपि वास्तविक फाटक तो होली दरवाजे पर ही है, बाक़ी तो नाम-मात्र हैं।]

मथुरा में शिक्षा-संबंधी संस्थाएँ भी बहुत हैं। भैया अग्रवाल-कॉलेज, किशोरीरमण-हाईस्कूल, गवर्नमेंट-हाईस्कूल, मिशन-हाईस्कूल, कई मिडिल स्कूल और संस्कृत-पाठशालाएँ हैं। हिंदी-साहित्य को सदा से ही मथुरा पर गर्व रहा है। प्रसिद्ध गायक चंदन चौबे मथुरा ही के निवासी हैं, जिनकी अभी हाल ही में मृत्यु हुई है।

मथुरा का मुख्य बाजार होली दरवाजे से शुरू होकर डीग दरवाजे तक चला गया है। होली दरवाजे से द्वारकाधीश के मंदिर और उसके आगे जुमा मसजिद तक बाजार में बहुत चहल-पहल और रौनक़ रहती है। सड़क के दोनो ओर दूकानें हैं, और बड़े-बड़े मंदिर और इमारतें।

यहाँ की रबड़ी, खुरचन, पेड़ा, ठाकुरजी का सामान, नाटक का सामान, छपे कपड़े, पलँग की निवाड़ और ताँगे का सामान व्यापार की दृष्टि से अति प्रसिद्ध है।

मथुरा में धर्मशालाएँ बहुत हैं। यात्री पंडों के यहाँ भी टिक सकते हैं। यहाँ एक अस्पताल है, कई बैंक और लाइब्रेरियाँ हैं।

मथुरा अति प्राचीन नगर है। भगवान् कृष्ण की यह जन्म-भूमि तथा केलि-भूमि रहा है। इसे मधुपुरी भी कहते हैं, क्योंकि इसे मधु राक्षस ने बसाया था। मथुरा इतना प्राचीन है, किंतु प्राचीनता के चिह्न विशेष रूप से इसमें पाए नहीं जाते। इसका कारण है। यवनों की द्वेष-पूर्ण दृष्टि इस तीर्थ पर सदा से रही है। न-जाने कितनी बार इसमें लूट-मार, हत्याकांड और बाहरी आक्रमण होते रहे हैं, जिससे बार-बार मथुरा नष्ट-भ्रष्ट होती रही है। मुहम्मद गजनवी, सिकंदर लोदी और औरंगजेब ने मथुरा के महत्त्व, मंदिरों और मनुष्यों का सत्यानास करने में कौन-सी कसर छोड़ दी थी। इतिहासवेत्ताओं का कथन है कि प्राचीन समय में

मथुरा की बस्ती उस स्थान पर थी, जहाँ आजकल केशवदेव का मंदिर है, जिसे औरंगजेब ने तुड़ाकर मसजिद बनवाई थी। मथुरा के लिये डॉक्टर एक़बाल का शेर याद आता है—

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़माँ हमारा।"

बौद्ध, हूण, शक, जैन आदि के भी आक्रमण इस पर हुए। यहाँ सिंधिया, जयपुर, होलकर, भरतपुर आदि के राज्य भी रह चुके हैं। इसी से तो मथुरा में सदा परिवर्तन होता रहा है। प्राचीनता के चिह्न मिटते गए हैं। नवीनता उन रिक्त स्थानों को लेती रही है।

स्वयं वेदों और पुराणों में मथुरा का वर्णन है। इससे भी मथुरा की प्राचीनता प्रकट होती है। कृष्ण ने इसी मथुरा-भूमि पर कंस को मारकर उग्रसेन को राज्य दिलाया था। कृष्ण मथुरा में उस समय तक रहे, जब तक १७ वाँ हमला जरासंध ने मथुरा पर न कर लिया।

व्रज में १२ प्रसिद्ध वन हैं—

(१) महावन, (२) मधुवन, (३) खदिर-वन, (४) ताल-वन, (५) भांडीर-वन, (६) काम-वन, (७) बेल-वन, (८) लोह-वन, (९) भद्र-वन, (१०) कुमुद-वन, (११) वृंदावन, (१२) बहुला-वन आदि।

व्रज में २४ उपवन हैं—

(१) गोकुल, (२) गोवर्धन, (३) बरसाना, (४) नंद-

गाँव, (५) संकेत, (६) परमभंद्र, (७) सुतीर, (८) रावल, (६) कोटवन, (१०) कोकिला-वन, (११) दधि-वन, (१२) आजनोखर, (१३) पियासो, (१४) करहला, (१५) आदि-बद्री, (१६) बच्छ-वन, (१७) बिलछू, (१८) परसौली, (१६) गंधर्व-वन, (२०) श्रीकुंड, (२१) खेलवन, (२२) अचगाँव, (२३) माँट, (२४) शेष शायी।

ब्रज में चार प्रसिद्ध नदियाँ हैं—

(१) यमुना, (२) कृष्ण-गंगा, (३) मानसी-गंगा, (४) चारण-गंगा।

ब्रज में चार पर्वत प्रसिद्ध हैं—

(१) गोवर्धन, (२) नंदीश्वर, (३) बरसाना, (४) चरण-पहाड़ी दो हैं।

मथुरा अपनी ब्रज-यात्रा के लिये प्रसिद्ध है। मथुरा की मुख्य ब्रज-यात्रा तो भादों में उठती है। यह स्वामी वल्लभाचार्य की चलाई है। प्रायः इस यात्रा में १॥ या २ महीने लगते हैं। यात्रा में रास तथा लीलाएँ, गाना-बजाना आदि होता रहता है। बड़ी भीड़ होती है। संग में डॉक्टर आदि भी चलते हैं। दिन-भर यात्रा होती है—रात्रि को डेरे पड़ जाते हैं। बड़ा आनंद इस यात्रा में आता है। १५ दिन की यात्राएँ भी रामडोल के नाम से निकलती हैं। ८४ कोस की ब्रज की यात्रा मथुरा के विश्राम-घाट से मधुबन, तालवन, कुमुदवन, गिरिधरपुर, शांतनु-कुंड (सेतोहा गाँव),

दतिया-गाँव, गणेशरा-गाँव, खेचरी-गाँव, बहुलावन, तोषक-गाँव, जासिन - गाँव, मुखराई - गाँव, जसोदी - बसोदी-गाँव, राधा-कुंड, गोवर्धन, जमुनावती-गाँव, अड़ीग, पारसोली (सूरदास की यहीं मृत्यु हुई थी), पैठा - गाँव, आन्योर, श्याम-ढाक, जतीपुरा, गाँठोली-गाँव, डीग (लठावन), परमदरा, आदिबद्री, कामवन, कनवारो, ऊँचो-गाँव, बरसाना, विहारवन, प्रेम-सरोवर, संकेत, रीठौरा-गाँव, मनिहारी-गाँव, नंद-गाँव, पियासो-गाँव, चरण-पहाड़ी, दधि-गाँव, फारैन, शेषशायी, कोसी, शेरगढ़, छाता, चीर-घाट, नंद-घाट, वत्सवन, रासौली-गाँव, नरी-सेमरी-गाँव, चौमुहा-गाँव, आजही, जैत, गरुड़-गोविंद, अक्रूर-गाँव, भँतरौंड, वृंदावन, सुरीर, भांट, भांडीर-वन, भद्रवन, मान-सरोवर, लोहवन, गोपालपुर, बंदी-आनंदी-गाँव, बलदेव-गाँव, ब्रह्मांडघाट, महावन, गोकुल, कर्णविल और रावल होती हुई मथुरा लौटती है ।

वृंदावन

अब मैं यात्रा में आए हुए मुख्य-मुख्य स्थानों का वर्णन करता हूँ । पहले वृंदावन का करता हूँ । सन् १९३३ के वसंत में मुझे वृंदावन जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

मथुरा के उत्तर में ६ मील पर, यमुना के किनारे, वृंदावन स्थित है । वृंदावन-गेट से (जुमा मसजिद के पास) इक्के-ताँगे जाते हैं । मोटरें भी जाती हैं, और रेल भी जाती है ।

वृंदावन जाने में मार्ग के दोनो ओर करील की झाड़ियाँ हैं—दूर तक जंगल-ही-जंगल है। वृंदावन में घाटों का विस्तार और सिलसिला १,३/४ मील तक है। प्रायः सभी घाट पक्के और पत्थर के बने हैं। यद्यपि यमुनाजी घाटों को छोड़ती चली जा रही हैं, और इससे घाटों की शोभा

यमुना-पुलिन

मारी जायगी। वर्षा में यमुना-पुलिन की शोभा अलौकिक होती है। मुख्य घाट ये हैं—

(१) केशी-घाट—यहाँ भगवान् ने केशी राक्षस को मारा था।

केशी-घाट
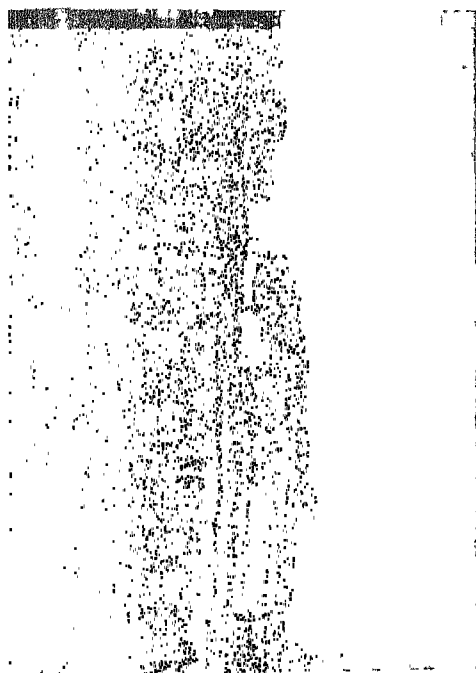
(२) चीर-घाट—यहाँ भगवान् ने गोपियों का चीर उस समय हरा था, जब वे नग्न जल में स्नान कर रही थीं। यहाँ एक विशाल कदंब का वृक्ष है, जिस पर चीर लटके हुए हैं।

चीर-घाट

(३) विहार-घाट

(४) कालीदह-घाट—यहाँ भगवान् ने काली नाग को नाथा था।

(५) भ्रमर-घाट

(६) युगल-घाट और मंदिर आदि।

वृंदावन के देखने योग्य मुख्य मंदिर तथा पवित्र स्थान ये हैं—

विश्रांत-घाट

(१) श्रीरंगजी का मंदिर—यह मंदिर क्या क़िला है, जो चार परकोटों से घिरा है। मंदिर के सामने एक बहुत ऊँचा सोने का खंभा है। मंदिर के परकोटों में पुजारियों (जो मदरासी हैं) के रहने के कमरे बने हैं, जिनमें प्रत्येक में कुआँ है।

(२) इसके निकट ही लाला बाबू का मंदिर है। यह अत्यंत सुंदर है।
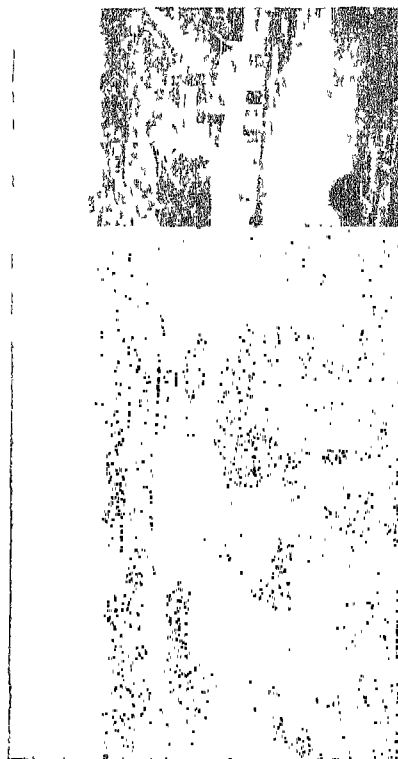
श्रीरंगजी का मंदिर

(३) बाँके बिहारीजी का मंदिर—यमुनाजी के किनारे बना है। बिहारीजी के पूर्ण दर्शन तो कदाचित् ही कोई कर पाता हो, क्योंकि एक मिनट को पट खुलते और बंद हो जाते हैं। तभी तो यहाँ की झाँकी प्रसिद्ध है। मूर्ति अत्यंत रमणीक है।

लाला बाबू का मंदिर

(४) राधारमणजी का मंदिर

(५) गोविंददेव का मंदिर—लाल पत्थर का बना यह मंदिर बहुत ऊँचा है। इसकी कई मंजिलें तो औरंगजेब ने तुड़वा डाली थीं। यह जयपुर के महाराजा मानसिंह का बनवाया हुआ अति प्राचीन और ऐतिहासिक मंदिर है। पत्थर का काम बहुत सुंदर है। ऐसा लगता है, जैसे कल ही बना हो।

(६) गोपीनाथजी का मंदिर

(७) मदनमोहनजी का मंदिर—यमुनाजी के किनारे है।

(८) राधावल्लभ का मंदिर

(९) ब्रह्मचारीजी का मंदिर

(१०) साह बिहारीजी का मंदिर—यह संगमरमर का बना है। इसके खंभे एक ही पत्थर के हैं। बसंत के दिन यहाँ का बसंती कमरा खुलता है, जहाँ सब वस्तुएँ पीली हैं—झाड़-फ़ानूस, कपड़े आदि सभी।

(११) राधा इंद्रकिशोरीजी का मंदिर

(१२) श्रीकिशोरीलालजी का मंदिर

(१३) युगलकिशोरजी का मंदिर—युगल-घाट पर।

(१४) राधामोहनजी का मंदिर

(१५) सालिगरामजी का मंदिर—इसमें सवा मन की शिवजी की मूर्ति है। यह लोई-बाज़ार में है।

(१६) अष्ट सखियों का मंदिर

(१७) श्रीराधाविनोद का मंदिर

(१८) गोपेश्वर शिवजी का मंदिर आदि।

इन मंदिरों के अतिरिक्त अन्य पवित्र दर्शनीय स्थान ये हैं—

(१) निधि-वन—यह अत्यंत रमणीक स्थान है।

(२) सेवा-कुंज—यह भी अत्यंत रमणीक स्थान है। वृक्ष

और लतादि के बीच में एक छोटा-सा मंदिर बना है। एक तमाल का वृक्ष है, जिसमें भगवान् ने माखन खाकर हाथ पोंछा था, इससे पेड़-भर में महादेव-ही-महादेव हो गए। कहते हैं, रात्रि के समय यहाँ यदि कोई रह जाय, तो उसकी मृत्यु हो जाय, क्योंकि रात्रि में भगवान् यहाँ विहार करते हैं।

ज्ञान-गुदड़ी

(२) ज्ञान-गुदड़ी--यहीं उद्धव ने गोपियों को उपदेश दिया था।

(४) वंशीवट

वंशीवट

(५) रास-मंडल

(६) ब्रह्मकुंड—यह अति प्राचीन है, और रंगजी के मंदिर के पीछे है। अब तो यह एक बहुत बड़ा सूखा तालाब-सा है। बीच में एक कुआँ है।

(७) दान-गली

(८) मान-गली

रास-मंडल
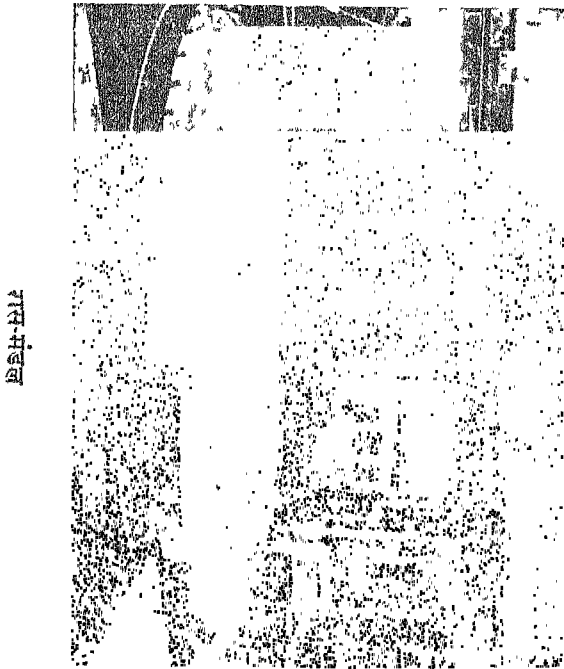
(६) यमुना-गली

(१०) कुंज-गली

वृंदावन बहुत बड़ा क़स्बा है। यहाँ कई बाज़ार हैं।

शिक्षा-संबंधी दो संस्थाएँ यहाँ की अति प्रसिद्ध हैं— एक तो प्रेम-महाविद्यालय और दूसरी ब्रह्मचर्य-आश्रम, वृंदावन।

प्रेम-महाविद्यालय स्वनामधन्य राजा महेंद्रप्रतापजी का बन-

बाया हुआ है। सरकार ने इसे जब्त कर लिया था, किंतु सन् १९३५-३६ में फिर लौटा दिया। सन् १९४१ में जब मैं वृंदावन गया, तो इस विद्यालय को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। विद्यालय की इमारत बहुत ऊँची और लंबी-चौड़ी है। मुख्य इमारत के सामने एक और इमारत भी इसकी है, जिसमें प्रैक्टिकल ट्रेनिंग दी जाती है। विद्यालय में प्रत्येक प्रकार की दस्तकारी की शिक्षा दी जाती है। मुझे केवल इमारत देखने का ही सौभाग्य प्राप्त हुआ। फाटक से होकर मैं भीतर गया। दर्जों में घूमता रहा, किंतु महाविद्यालय बंद था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि सत्याग्रह-आंदोलन के कारण यहाँ के कई शिक्षक जेलखाने में हैं, अतः विद्यालय बंद है। राजा महेंद्रप्रतापसिंहजी जापान में हैं—भारतवर्ष से उन्हें देश-निकाला हो चुका था*।

रावल, गोकुल, महावन, ब्रह्मांड-घाट और बड़े दाऊजी

मथुरा-वृंदावन का वर्णन मैं कर चुका। यों तो मैं रावल, गोकुल, महावन, ब्रह्मांड-घाट तथा बड़े दाऊजी कई बार गया, किंतु सबसे अधिक आनंद मुझे सन् १९३४ में आया। इन स्थानों को जाने के लिये बैलगाड़ी या ताँगे किए जाते हैं। रेल नहीं

* हर्ष की बात है, राजा महेंद्रप्रतापजी अब भारतवर्ष में लगभग ३०-३२ वर्षों के बाद आ गए हैं। —लेखक

है। पहले लॉरियाँ भी न जाती थीं, पर अब जाने लगी हैं।

मथुरा से प्रातःकाल पाँच बजे हम लोग ८-१० आदमी ताँगे से चले। पहले यमुनाजी का पुल पार किया। पुल के बीच में तो रेल की पटरियाँ हैं, जिन पर रेल और गाड़ियाँ भी चलती हैं, और पुल के इधर-उधर आदमी चलते हैं। पुल पार करने के बाद ही बाईं ओर मुड़ना पड़ता है; और वह सड़क सीधी बड़े दाऊजी को जाती है। कोई दो मील चलने के बाद मुख्य सड़क छोड़कर बाईं ओर चलना पड़ता है। मार्ग कच्चा है। प्रायः मील-डेढ़ मील भूमि पार करने के बाद हम लोग रावल पहुँचे। बीच का मार्ग अत्यंत चित्ताकर्षक है। चारों ओर हरियाली थी। भूमि जलाशयों से परिपूर्ण थी। हरे-हरे जंगल उस निस्तब्ध स्थान के सौंदर्य की वृद्धि कर रहे थे। प्रातःकाल का दृश्य और चिड़ियों का कलरव। रावल में एक ही मंदिर है, जहाँ श्रीलाड़िलीजी (राधाजी) के दर्शन हैं। मंदिर पक्का बना है। सीढ़ियाँ चढ़कर मंदिर में प्रवेश करते हैं। यमुना-जी मंदिर को छूती हुई बह रही थीं। यहाँ राधा-घाट है। राधिकाजी का यह ननिहाल और जन्म-भूमि है। मैं १९१६ से अब इस ओर आया था—प्रायः १८ वर्ष बाद। १९१६ में तो मैं निरा बालक ही था, किंतु उस आयु की मधुर स्मृतियाँ मुझे सदैव आनंदित करती रहती थीं। अब तो

अपनी स्मृति को प्रत्यक्ष रूप में दोहराने और मिलाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे याद है, सन् १६ में मेरे
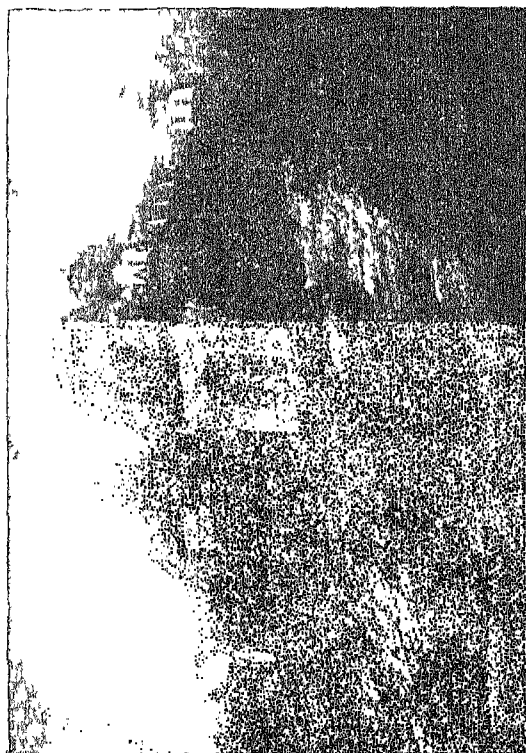
श्रीलाडिलीजी (राधाजी) का मंदिर

पिताजी यहाँ ७-८ दिन रहे थे—श्रीमद्भागवत की कथा उन्होंने कहलवाई थी। मैं तब दिन-भर अपनी बड़ी बहन और वहीं के एक बनिए के लड़के के साथ यमुनाजी में नहाया

करता था। यमुना उथली थीं, पर एक बार मैं डूबते-डूबते बचा था। मैं आस-पास के बाग़ों में घूमा करता। १८ वर्ष बाद उन्हीं बाग़ों में फिर गया—अपनी स्मृति के चित्रों से प्रत्यक्ष स्थानों को मिलाता हुआ। मेरी स्मृति के चित्र ठीक थे, किंतु बाग़ उजड़ चुके थे। यह मेरी स्मृति का दोष नहीं, समय और परिवर्तन का दोष था। उस समय लाड़िलीजी का मंदिर जीर्ण दशा में था, किंतु अब किसी सेठ ने उसका जीर्णोद्धार करा दिया था। जिस बनिए की दूकान पर मैं जाया करता था, वहाँ भी गया। दूकान थी, पर दूकानदार नहीं। भूमि वही थी, पर उसमें वह आकर्षण और सौंदर्य कहाँ, जो बाल्यावस्था की भोली, पवित्र और अज्ञान आँखों ने देखा था। जब आत्मा की शुद्धि और भोलापन नहीं, जब बचपन की मिठास नहीं, और हृदय की कोमलता नहीं, तो प्रकृति का वह सौंदर्य कहाँ से दिखाई दे। अब तो ठोस अनुभव, विस्तृत ज्ञान और तुलनात्मक ज्ञान की कसौटी पर इस कठोर हृदय को वास्तविक और सच्चे सौंदर्य के दर्शन ही कहाँ होते हैं। उस समय की एक घटना अब भी मुझे याद है। मंदिर के अंदर एक बड़ा इंदारा था—दीवार से सटा हुआ। मैं एक कनकैया पकड़ने के लिये दीवार पर खिसकने लगा। पिताजी ने कथा सुनते-सुनते जो यह देखा, तो उनका हृदय धक् से रह गया। वह चुपके-चुपके पीछे से आए, यदि ज़रा भी

शोर करते, तो मैं घबराकर भागता और इंदारे में होता। पीछे से उन्होंने मुझे पकड़ लिया।

रावल में अपनी बाल्यावस्था के इतिहास को मेरा मस्तिष्क और नेत्र दोहराते रहे। कुछ समय के लिये मुझे आत्मविस्मृति-सी हो गई। अपने उस समय के हृद्गत भावों का वर्णन करना असंभव है।

रावल से बहुत भारी हृदय से मैं चला। हम लोग २-३ घंटे बाद बड़े दाऊजी पहुँचे। गोकुल मार्ग ही में पड़ता है, किंतु सोचा कि लौटते समय इसके दर्शन करेंगे। मार्ग में सड़क के दोनों ओर जंगल है। तोतों, मोरों, और हिरनों का तो व्रज घर ही है। हर ओर करील की झाड़ियाँ और कहीं-कहीं कदंब के वृक्ष। वे ही करील और कदंब, जिनका भक्त-काल और रीति-काल के कवियों ने सदियों तक बखान किया, और जिनका नाम सुनते ही कृष्ण की मूर्त्ति आँखों के सामने आ जाती है। विद्यापति, जयदेव, सूर, नंददास आदि ही नहीं, अनेक यवन, भक्त-कवि और कवयित्रियाँ, कवि रसखान और ताज आदि भी जिन्हें देखकर ब्रह्मानंद प्राप्त करते थे, उन्हीं को देखकर सारे प्राचीन साहित्य का इतिहास मेरे मस्तिष्क में फिरने लगा—व्रजभाषा के मधुर गीत और काव्य मेरे कानों में गूँजने लगे। मेरे विचारों की रेलगाड़ी उस समय रुकी, जब मेरे ताँगे को दाऊजी के पंडों ने घेर लिया। कल्पना-जगत् से इस प्रत्यक्ष जगत् पर पटक दिया

गया। पाठकगण, विचार तो कीजिए, कहाँ तो अतीत के इतिहास का रस लेता हुआ मेरा मन और मस्तिष्क, और कहाँ पंडों की काँव-काँव! पंडों के बहीखातों और प्रश्नों की झड़ी से मैं व्याकुल हो उठा—कहाँ रहते हो? क्या नाम है? कौन पंडा है? इत्यादि। मैं उस समय विचार में लीन होना चाहता था, और वे दुष्ट मेरा पिंड छोड़ने को तैयार न थे। अंत में उनकी ही जीत हुई। मुझे उनके इस व्यवहार से घृणा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक था। मेरी सुखद कल्पना का अध्याय समाप्त हो गया। बड़े दाऊजी के मंदिर में गया। वहाँ माखन-मिसरी का भोग लगता है। वहाँ के बेचनेवालों की बेईमानी देखिए—औवल तो ताज़ा मक्खन नहीं होगा—न-जाने कब का बासी, फिर ठीक मक्खन भी न होगा। उसमें घुइयाँ आदि का मेल करते हैं, और दाम पूरे और अच्छे मक्खन के लेते हैं। यह दोष वहाँ के ही दूकानदारों में नहीं, प्रायः भारत-भर के तीर्थ-स्थानों पर यह धींगाधींगी देखने में आती है। लोगों की नियत बिगड़ गई है, तभी तो बरकत नहीं होती। हम कहते हैं, अँगरेज़ों की सभ्यता का हमारे आचरण पर प्रभाव पड़ा है, पर सच बात मानने में किसी को दुबिधा न होनी चाहिए। अँगरेज़ व्यापार और दूकानदारी के संबंध में बड़े ईमानदार होते हैं। वे सच्चे व्यापारी होते हैं, तभी तो उनकी यह उन्नति है। मंदिर में गए। एक ओर

बलदेवजी की विशाल श्याम मूर्ति है, और दूसरे कोने में रेवतीजी की। बलदेवजी की मूर्ति के विषय में एक दंत-कथा है। कहते हैं, दाऊजी की मूर्ति मंदिर के निकट एक तालाब (क्षीर-सागर) में जल के अंदर पड़ी थी।

क्षीर-सागर

एक बार एक साधु को स्वप्न हुआ कि भगवान् कह रहे हैं —

"मैं क्षीर-सागर में विश्राम कर रहा हूँ। मुझे बाहर निकालकर स्थापित करो।" वैसा ही किया गया। एक और भी कथा है। औरंगजेब ने ब्रज-भूमि के असंख्य मंदिरों और मूर्तियों का नाश किया, किंतु बलदाऊजी पर कृपा रही। इसका कारण यह है कि वह यहाँ तक पहुँचा ही नहीं। कुछ कहते हैं कि मंदिर से असंख्य भौंरे निकल पड़े, इससे यवन-सेना को भागना पड़ा। कुछ का कहना है कि मथुरा में कई महात्माओं तथा कई मंदिरों द्वारा उसे ऐसे चमत्कार देखने को मिले कि वह इस ओर न आया। खैर, कारण कुछ भी हो, यवनों के अपवित्र हाथों से यह स्थान बचा रहा।

जिस दिन हम लोग पहुँचे, उस दिन जन्माष्टमी का भोर था। यहाँ नंदोत्सव मनाया जा रहा था। यहाँ इस दिन दही से भरे हंडे रक्खे रहते हैं। दधि-काँधो में हल्दी और दही मिलाकर खूब उछाला जाता है। बहुत संख्या में लोग एकत्र होते हैं। मंदिर के पुजारी खूब दधि-काँधो मनाते हैं, बाजे बजते हैं, खुशियाँ मनाई जाती हैं। भगवान् कृष्ण के जन्म लेने की प्रसन्नता में ब्रज-वासियों ने खूब दूध-दही लुटाया होगा, उसी की स्मृति में यहाँ पुण्य पर्व मनाया जाता है। ऐसे उत्सव के समय चित्त में प्रसन्नता समाती नहीं है।

गाँव का नाम बलदेव-गाँव है। इसे रोढ़ा-गाँव भी कहते

है। गाँव में अच्छी बस्ती है। यहाँ खाने-पीने की सारी आवश्यक वस्तुएँ मिल सकती हैं। मंदिर के निकट क्षीर-सागर है। उसमें नहाने का बड़ा माहात्म्य है। हम लोग नहाने के लिये उतरे। पानी के पास आते ही मुझे बड़ी बदबू मालूम दी। बात यह है कि छोटा-सा तालाब है, जिसमें उथला पानी है ताज़ा पानी भरा नहीं जाता, वरन् लोग उसी में कूड़ा-करकट फेंकते हैं। मुझे ऐसे पवित्र स्थान की यह दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। मेरी श्रद्धा लुप्त हो गई। मैंने कहा, मैं नहीं नहाऊँगा, पर साथ में औरतें थीं—इतना बड़ा पाप और अधर्म वह मुझे कैसे करने देतीं? मैं उस पवित्र, किंतु गंदे क्षीर-सागर में नहाया क्या, नहलाया गया। पाठको! विश्वास कीजिए, मैं जब तक मथुरा नहीं आ गया, और फिर से नहाया नहीं, तब तक मैं रास्ते-भर थूकता ही आया। मेरे दिमाग में बदबू भर गई। अच्छा हो, यदि धर्मात्मा लोग क्षीर-सागर का जीर्णोद्धार कराएँ, और जल स्वच्छ रक्खें।

सन् १६ में, मुझे याद है, १००-१५० मनुष्यों के साथ हम लोग यहाँ आए थे। मेरे पिताजी के एक मित्र हैं, उनके लड़के का यहाँ मूड़न था, और किस प्रकार स्त्रियाँ आपस में खेला करती थीं। उस समय मैं पिताजी से दिन-भर पैसे लेता था। कहता था—"भोग लगाऊँगा।" यहाँ यह नियम है कि प्रसाद लो, और स्वयं ही बलदाऊजी

की मूर्ति के सामने रक्खो, और फिर नहा लो। अस्तु। भगवान् के एजेंटों (पंडा लोगों) के हिस्सा बटवा लेने का डर था ही नहीं, इसी से मेरी भक्ति उन दिनों बड़े जोरों पर थी। पिताजी कहते थे—'दिन-भर भोग नहीं लगता। भगवान् के ऊपर एहसान अच्छा है।" मुझे याद है, उस ज़माने में काफ़ी अच्छा मक्खन मिलता था, और अधिक भी। न इतनी महँगी थी, न इतनी नियतें खराब। ज़माना मेरे देखते-देखते इतना बिगड़ा है। अस्तु। मेरा दिन-भर भोग लगता। भक्त लोगों की श्रद्धा भोग लगाने के मामले में अत्यधिक होता है। बात यह है कि बेचारे भगवान् तो कुछ खाते नहीं। हाँ, यह मेरा विश्वास है कि यदि भगवान् एक दिन भी भोग खा लें, तो दूसरे दिन से उनकी यह इज़्ज़त दूर हो जाय। प्रथम तो प्रसाद ही क्यों लोग लगावें, और लगावें भी, तो काफ़ी दूर से प्रसाद दिखा-कर ही हटा लें। भगवान् खूब समझते हैं—अपनी इज़्ज़त अपने हाथ है।

एक बात और कहना है—बलदाऊजी यहाँ काले हैं। इसके विषय में लोगों का कहना है कि कृष्ण ने अपना रंग यहाँ बलदाऊजी को दे दिया। कुछ कहते हैं, श्यामली मूर्ति में अधिक आकर्षण होता है, इसी से यहाँ की मूर्ति साँवली है। वैसे ही रेवतीजी की मूर्ति दूर पर होने का कारण लोग यह बतलाते हैं कि रेवतीजी और बलदाऊजी से किसी बात

पर रूष्ट हो गई थी, तभी से वह रूठी हैं। हो सकता है, संसार तो है ही।

यहाँ से ८-१० मील पर देवनगर-नामक स्थान है। यहाँ राम-सागर-कुंड, दिग्पाति गोप का स्थान और एक विशाल कदंब का वृक्ष है। लौटते समय हलोड़ा-गाँव पड़ता है, जहाँ नंदजी की बैठक है। इसके आगे, ७-८ मील के बाद, ब्रह्मांड-घाट पड़ता है। यमुनाजी के किनारे एक पक्का घाट है, जो अब जीर्ण दशा में है। घाट पर एक मंदिर है, एक विशाल पीपल का वृक्ष। यह स्थान अत्यंत रमणीक है। यहाँ भगवान् ने मिट्टी खाई थी, और माता यशोदा के डाटने पर मुहँ खोलकर ब्रह्मांड दिखा दिया था। यहाँ मिट्टी के ढेले मोल बिकते हैं। प्रकृति अपने पूर्ण रूप से इस ओर वर्तमान है। २-४ साधु तथा २-४ पुजारियों के अतिरिक्त यह स्थान निर्जन है। जब मैं ६ वर्ष का था, तब मैंने इन स्थानों को देखा था, किंतु इन स्थानों के चित्र जो मेरे मस्तिष्क में थे, वे ठीक थे।

यहाँ से महावन की ओर ताँगा चला। घने जंगलों के बीच से होते हम लोग महावन पहुँचे। अनेक गायों को यहाँ चरते हुए देखा। महावन में देखने योग्य स्थान निम्न-लिखित हैं—

शकटासुर-वध-स्थान, तृणावर्त-वध-स्थान, नंद का दतून-स्थान, नारद-टीला, यमलार्जुन-मोक्ष-स्थान, पूतना-वध-

स्थान, नंद-भवन श्याम मंदिर, मथुरानाथ तथा द्वारकानाथ के मंदिर, गाय-कुंड, कोयला-घाट, महाकवि-रसखान का स्मृति-स्थान, मेवाड़ के राना कतीरा के बनवाए क़िले के खँडहर आदि।

एक बड़ा ऊँचा टीला है, जिस पर कड़ी चढ़ाई है। उस पर कई मंदिर और मूर्तियाँ हैं। सबसे प्रसिद्ध चौरासी खंभे का मंदिर है। कहते हैं, इसके खंभे गिनने पर कभी ८४ नहीं आवेंगे—कभी एक-आध कम, कभी एक-आध ज्यादा। इसी में दधि मथने तथा ऊखल आदि का स्थान है। महावन को पुराना गोकुल भी कहते हैं। यहाँ नंदजी पहले रहते थे, और कृष्ण ने गउएँ चराई हैं।

यहाँ से थोड़ी दूर पर गोकुल है। यह यमुनाजी के बाऐँ किनारे बसा है। यहाँ का प्रसिद्ध घाट ठकुरानी-घाट है। नंदजी की गउओं का यहाँ स्थान है। यहाँ क़िला-ऐसा बना मालूम पड़ता है। बहुत ऊँची दीवारें हैं—यमुनाजी बहुत नीचे बहती हैं। गोकुलनाथजी का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ श्रीराजा ठाकुर का भी मंदिर है। २४-२५ छोटे-बड़े मंदिर यहाँ हैं। स्वामी वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथजी तथा गोकुलनाथजी की बैठकें यहाँ हैं। यहीं श्रीविट्ठलनाथजी की छीत स्वामी (अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि) से भेंट हुई थी। गोपाललाल, नवनीतलाल, नत्थूराम का बनवाया मंदिर और नंद-घाट आदि भी देखने योग्य हैं। क़िले पर एक

स्थान पर एक मंदिर है—वहाँ ठाकुरजी का झूला झुलवाते हैं, और यात्रियों को ठगकर रुपया ले लेते हैं।

सन् १६ में ५-६ दिन मैंने गोकुल में निवास किया, अतः खूब घूमा था। इस बार भी खूब घूमा। यहाँ बहुत बड़ी बस्ती है। इक्के-ताँगे भी बहुत हैं। यहाँ खाने-पीने तथा और चीज़ों की दूकानें हैं। यह गाँव बहुत सुंदर है। हिंदू-धर्म का बोलबाला यहाँ दिखाई देता है। मालूम होता है, यहाँ वास्तव में हिंदू-धर्म है। यद्यपि उस धर्म में वास्तविकता से अधिक ढोंग और अंध-विश्वास का अंश है। धर्म जैसे यहाँ पैसों से बिकता है—धर्म का यहाँ व्यापार होता है। ग़रीब और अमीर का भेद भगवान् के मंदिर में भी पूर्ण रूप से है। धर्म को न जानते हुए भी हम धर्मात्मा हैं। सच तो यह है कि आस्तिक कहलाते हुए भी हम नास्तिक हैं। अस्तु।

गोकुल से सीधे हम लोग मथुरा गए।

गिरिराज, गोवर्धन, जतीपुरा, राधा-कुंड, कृष्ण-कुंड

गोवर्धन, गिरिराज और जतीपुरा भी जाने का कई बार मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किंतु १६३२ में मैं अपने एक मित्र के साथ दीवाली के दिन दोपहर को लॉरी से गोवर्धन गया। पहले राधा-कुंड गया, जो मुख्य मार्ग से बाईं ओर है। अरिष्टासुर को मारने पर जो बैल मारने का पाप कृष्ण को लगा था, उसे दूर करने को स्वयं राधाजी ने अपने हाथों से एक कुंड खोदा—वही राधा-कुंड है। निकट ही कृष्ण-

कुंड है। इसके अतिरिक्त और भी कई कुंड वहाँ हैं। यहाँ महाप्रभु की बैठक तथा अन्य छोटे-छोटे मंदिर आदि हैं—जैसे पाँचों पांडवों के वृक्ष, वेणु-कानाद, नारायण-कुंड, कुशा-मोखरी, उद्धव-कुंड, नारद-कुंड कला पोखरा आदि। गोवर्धन में मानसी-गंगा पर दीवाली की जो अपूर्व शोभा होती है;

कुसुम-सरोवर

वह अवर्णनीय होती है। चार बजे के निकट वहाँ पहुँचे। विचार यह था कि रात को लॉरी से लौट आवेंगे। इससे

ओढ़ने-बिछाने का कुछ सामान न ले गए थे। वहां बड़ी भीड़ थी। सायंकाल को मानसी-गंगा की परिक्रमा होती है।
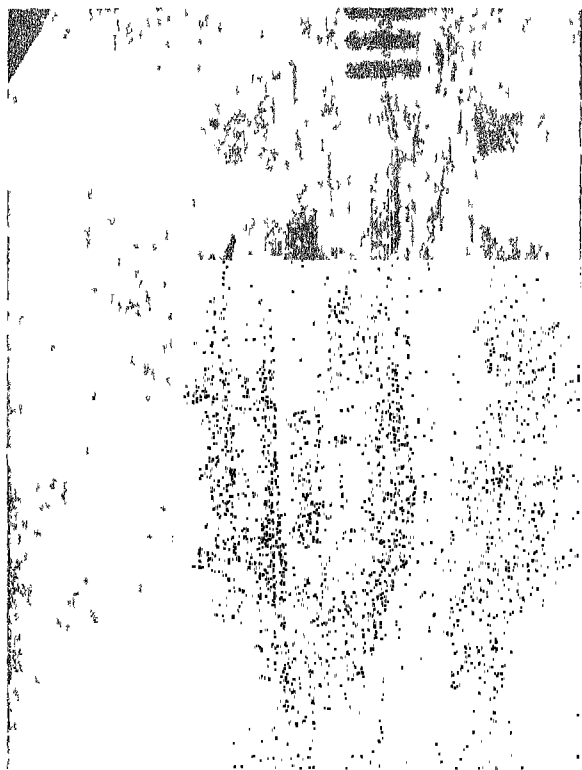
मानसी-गंगा, ग्राम महल गोवर्धन

हज़ारों आदमी 'श्रीराधे'-'श्रीराधे' कहते हुए उस विस्तृत तालाब की परिक्रमा करते हैं। उस तालाब की विचित्रता यह है कि एक स्थान से उसे देखिए, तो ऐसा लगता है कि यह

इस स्थान पर समाप्त हो गया है, किंतु अब उस स्थान पर जाइए, जहाँ वह समाप्त हो गया-सा लगता था, तो आपको यह तालाब और दूर तक फैला दिखाई देगा। बात यह है कि यह तालाब काफी चौड़ा और गहरा तो है ही, साथ ही बहुत लंबा भी है। किंतु यह टेढ़ा-मेढ़ा बना है, इससे एकदम से एक स्थान से पूरा नहीं दिखलाई देता। परिक्रमा में बड़ा आनंद आया, यद्यपि धूल से हम लोग इक गए। ८ बज गए थे। हम लोगों ने सोचा, हटाओ, अब क्या लौटें मथुरा। अस्तु। मानसी-गंगा के निकट एक छतरी (बड़ी इमारत) में हम लोगों ने अपना डेरा लगाया। डेरा क्या लगाया—एक दरी बिछाने को ले गए थे, वह एक कोने पर बिछाई गई। जूतों ने तकिए का काम दिया। ओढ़ने के लिये केवल मेरे गले पर पड़ा हुआ दुशाला था। दोनो आदमी गठरी बाँधे पड़े रहे, क्योंकि सर्दी काफी थी। हम लोगों के वहाँ रुक जाने के कई कारण थे। एक तो मानसी-गंगा के किनारे लाखों की संख्या में दिए जलाए जाते हैं। उस दिन यात्रीगण ऐसा करके पुण्य लूटते हैं। छतरी की ओर के घाटों पर भरतपुर-राज्य की ओर से दिए जलाए जाते हैं। इतना प्रकाश होता है, और ऐसी जगमग होती है कि दिन-सा जान पड़ता है। जीवन में उस दिन के दृश्य को कभी नहीं भूलूँगा। टिमटिमाते दीपकों की प्रतिच्छाया जल में पड़कर एक अपूर्व शोभा दिखाती थी। लोगों का कहना है,

१२ बजे रात्रि को मानसी-गंगा का जल दुग्ध में परि-वर्तित हो जाता है। एक देवीजी ने तो लखनऊ में मुझसे कहा था कि मैंने अपनी आँखों से दूध की मानसी गंगा देखी है। अस्तु। मैं भी दुग्ध की मानसी-गंगा देखने के लिये १२ बजे रात को कुंड के किनारे गया। मुझे तो पानी-ही-पानी दिखाई दिया। कदाचित् मैं पापी हूँ, इससे पानी दुग्ध न हुआ हो। मुझे तो लगता है कि लोगों ने कहा होगा—"दीपकों के प्रकाश के कारण पानी दूध के समान हो जाता है।" देवीजी ने 'दूध के समान' में से 'के समान' निकाल दिया होगा। भक्ति और विश्वास में 'उपमालंकार' की कौन आव-श्यकता? १२ बजे रात को नहाने का माहात्म्य है, किंतु मैंने वह पुण्य न लिया—केवल आचमन-मात्र से ही संतोष किया। रुपया-भर न सही, आने-दो आने, कुछ तो पुण्य हुआ ही होगा।

मेरे मित्र तो बाज़ार से दूध पी आए थे। दूध क्या था, मानसी गंगा का जल दूध का रूप धारण किए हुए था। किंतु मैंने सोचा, उपवास ही कर डालूँ, क्योंकि खाने के लायक मुझे गर्दोगुबार के कारण कोई चीज़ समझ न पड़ी।

रात-भर ठंड तो अवश्य लगी (छतरी पर पड़े-पड़े), किंतु जो स्वर्गीय आनंद मुझे उस रात्रि को प्राप्त हुआ, वह मेरे कष्ट की अपेक्षा बहुत ज्यादा था। रात्रि-भर ब्रजवासियों की ढोलक और मधुर गीतों तथा भजनों का आनंद लेता रहा।

नींद क्या आती उन सुख में। अच्छा ही हुआ कि उस दिन ओढ़ने को न था, नहीं तो कदाचित् निद्रा उन सुखों का उपभोग न करने देती, जिनकी याद आज भी मुझे प्रफुल्लित करती है।

प्रातःकाल हुआ। चारों ओर की गंदगी का आनंद लेना ही पड़ा। फिर छतरियों को देखने गया। पहले मानसी-गंगा के निकट गिरिराजजी के दर्शन किए। श्रीहरदेव तथा लक्ष्मी-नारायणजी का मंदिर भी अच्छा है। गोरोचन, पापमोचन, धर्मरोचन और ऋणमोचन-नामक चार कुंड भी हैं। प्रसिद्ध कुसुम-सरोवर और राजा सूरजमलजवाहरसिंह की छतरी भी देखने योग्य है। भरतपुर के राजाओं की बनवाई छतरियाँ (समाधि) हैं, जिनकी छतों में बड़ी अच्छी चित्रकारी है। गोवर्धन को गिरिराजजी भी कहते हैं।

यहाँ सब देख-दाखकर गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करने के विचार से हम लोग चल पड़े। गोवर्धन पर्वत का प्रारंभ मानसी-गंगा से होता है। तालाब के बीचोबीच में पर्वत-खंड दिखाई देते हैं। कहते हैं, पहले ये पर्वत बहुत ऊँचे थे, पर अब धीरे-धीरे पृथ्वी में धँसते चले जा रहे हैं। पर्वत प्रायः ७ मील लंबा है। मानसी-गंगा की उत्पत्ति के विषय में यह दंत-कथा है कि इसकी उत्पत्ति भगवान् ने अपने मन से की थी। परिक्रमा में जूते नहीं पहन सकते, अतः चरणदासी तो कपड़े में लपेटी गई और हम लोग नंगे पैर चले। इस यात्रा

में मार्ग का दृश्य अत्यंत मनोहर है। एक ओर गोवर्धन पर्वत की लंबी श्रेणी चली गई है, जिस पर घने पेड़ हैं। हिरन चौकड़ियाँ भरते हुए गिरोह-के-गिरोह आपके सामने से निकल जाते हैं, और स्थान-स्थान पर मोर बोलते, नाचते या चलते हुए दिखाई देते हैं। जैसे लखनऊ में आपके सिर पर कौओं के झुंड मँडराया करते हैं, वैसे ही यहाँ आपको तोतों के झुंड उड़ते हुए दिखाई देते हैं। इस ओर बालू बहुत पड़ती है। आपके पीछे पाई-पैसा माँगती हुई ब्रज की छोरियाँ और छोरे (लड़कियाँ और लड़के) दौड़ते हैं। ब्रज-भाषा की मिठास का यदि सच्चा आनंद मनुष्य को लेना हो, तो वह ब्रज-भूमि में स्वयं आवे। यहाँ की इतनी सुंदर भाषा और बोली, भगवान् की यह केलि-भूमि और यहाँ इतनी ग़रीबी—इसे भगवान् की माया न कहें, तो क्या कहें? इस ओर के कुओं का पानी बहुत ही खारी होता है।

गिरिराज होते हम लोग जतीपुरा पहुँचे। पर्वत के ऊपर चढ़ गए। चोटी पर श्रीनाथजी का एक मंदिर है, जिसकी मूर्ति आज-कल श्रीनाथद्वारा में है। यहाँ बड़ी चहल-पहल थी। मंदिर से गाजे-बाजे के साथ भगवान् की मूर्ति लाई जाती है। आगे-आगे हाथी होते हैं, फिर गाजा-बाजा। पर्वत के सामने ही एक ऊँचा कोठा-सा बना है—भगवान् की चल-मूर्ति वहाँ पधराई जाती है, और पूजा-पाठ आदि के पश्चात् गिरिराज

पर्वत पर दूध चढ़ाया जाता है। गिरिराजजी का जो मुखार-विंद है, उस पर मनों दूध चढ़ता है। यदि मैं सुनता, तब तो विश्वास न करता, किंतु अपनी आँखों से देख आया हूँ। बड़े-बड़े हंडे दूध के आते हैं, और गिरिराज पर चढ़ाए जाते हैं। दूध पानी की भाँति नाली में बहने लगता है। पहले तो मिट्टी से मिलकर गँदला रहता है, पर फिर जब मिट्टी बैठ जाती है, तो स्वच्छ दूध मीलों तक बहता रहता है नाली से। लोग दूध लोटों में ले-लेकर पीते हैं। यहाँ दूध चढ़ाने का बड़ा माहात्म्य है।

वल्लभ-संप्रदाय के वैष्णवों का 'जतीपुरा' प्रधान स्थान है। यहाँ कई कंदराएँ हैं। एक बजनी शिला है, जिसे बजाने से घंटी की-सी आवाज होती है। ऐसी ही बजनी शिला मुझे वैद्यनाथधाम के आगे त्रिकूटगिरि पर दिखाई दी थी। सिंदूरी शिला है, जिसमें हाथ रगड़ने से हाथ में सेंदुर लग जाता है। श्रीनाथजी के प्रकट होने का स्थान, दंडौती शिला, राधाजी के तीज का चबूतरा, कदम-कुंड, सूर्य-कुंड महाप्रभुजी की बैठक, नाभि का चिह्न, श्रीनाथजी के प्रकट होने का स्थान, बूढ़े बाबू का मंदिर, बिलछूवन, राधिकाजी की बैठक, जान-अजान वृक्ष, पूजनी शिला, कंदुक-क्रीड़ा स्थान आदि भी आस-पास दर्शनीय हैं। यह सब आनंद लेने और अन्नकूट के दर्शन करने के पश्चात् हम लोग आगे बढ़े।

यहाँ से डीग, जिसे जलमहल भी कहते हैं, और जो भरतपुर में है, जाते हैं। यहाँ नरेशों के बनवाए अत्यंत सुंदर मंदिर हैं। दाऊजी का भी मंदिर है, रूप-सागर नामक एक सरोवर भी है। भादों बदी अमावस को जब यहाँ मंदिरों के सब फौवारे खोल दिए जाते हैं, तो कहते हैं, बिलकुल वर्षा-ऋतु का आनंद आ जाता है।

अन्नकूट का दिन था। हम लोग ३-४ बजे मथुरा पहुँचे। वृंदावन गए, और रात्रि को मथुरा के मंदिरों में घूमे। अन्नकूट का त्योहार मथुरा और वृंदावन में भी बड़े उत्साह और जोरों से मनाया जाता है। मथुरा में द्वारकाधीश के मंदिर में मनों चावल का भोग लगता है। पकवान इतना अधिक होता है कि मंदिर की पूरी दालान उससे भरी रहती है। ब्रज में अन्नकूट पर बड़ी भीड़ होती है, क्योंकि प्रथम तो अन्नकूट पर ही मथुरा की शोभा अलौकिक होती है, दूसरे, दूसरे दिन भाई-दुइज को लाखों आदमी अपनी बहनों का हाथ पकड़-कर नहाते हैं। कहते हैं, ऐसा करने से यमराज कभी उन्हें दुःख नहीं देते। इसका वर्णन पहले भी हो चुका है।

कोसी, छाता, नंदगाँव और बरसाना

नंदगाँव-बरसाना जाने में यों तो प्रत्येक समय ही आनंद है, किंतु इन स्थानों का वास्तविक आनंद लेने के लिये होली में जाना चाहिए। यहाँ की होली बहुत प्रसिद्ध है। होली में ऐसा होता है कि एक ओर से मनुष्यों का गिरोह चलता है

और दूसरी ओर से स्त्रियों का। पुरुष स्त्रियों पर रंग फेंकते और होली के गीत गाते हैं। स्त्रियाँ इन पर लकड़ी चलाती और उन्हें दूर तक खदेड़ती हैं। यद्यपि आदमी सिर पर कपड़ा लपेटे रहते हैं, और लकड़ी से वार रोकते भी हैं, पर फिर भी कभी-कभी चोट आ ही जाती है। स्त्रियाँ वार करती हैं, पुरुष वार बचाते हैं, कभी वार नहीं करते। फिर पुरुष आगे बढ़ते हैं, और फिर स्त्रियाँ उन्हें खदेड़ती हैं। सामूहिक रूप में पवित्र भाव से होली खेलते हुए यहीं देखा जा सकता है। यहाँ ऐसा ही रिवाज है। अब मैं नंदगाँव बरसाने की दर्शनीय वस्तुओं का वर्णन करूँगा।

मथुरा से मैं लॉरी पर (इस रूपे) कोसी गया। पहले जब मैं गया था, तो केवल बैल गाड़ियाँ या ऊँट-गाड़ियाँ जाती थीं, ताँगे भी जाते थे। अतः बहुत समय और खर्च लगता था, किंतु अब ये असुविधाएँ दूर हो गई हैं। कोसी तक ट्रेन भी जाती है, और लॉरी तो नंदगाँव-बरसाना के आगे कामवन तक जाती है। लॉरी जैत (यहाँ कृष्ण-कुंड है और अघासुर राक्षस की प्रतिमूर्ति सर्प), चौमुहाँ-गाँव (ब्रह्माजी भगवान् के बछड़ों को चुराकर यहीं आए थे, और भगवान् को विहार करते देखा था), नरी-सेमरी-गाँव (यहाँ बलदाऊ-मंदिर, नरीदेवी, किशोरी-कुंड, सेमरीदेवी और नारायण-कुंड हैं), छाता (यहाँ सूरज कुंड और शेरशाह की बनवाई हुई सराय है। सराय क्या है, बड़ा भारी क़िला है, जो सड़क से

नंद-गाँव का मनोहर दृश्य

थोड़ी ही दूर होने के कारण मोटर से दिखाई देता है) होते कोसी (यह अनाज की बड़ी मंडी है, और कपास के कई कारखाने यहाँ हैं। यहाँ का फूलडोल का मेला प्रसिद्ध है। कई कुंड भी यहाँ हैं) आई। यहाँ ताँगा किया। यहाँ से

नंदगाँव १० मील है। दो कोस पहले ही से नंदगाँव की पहाड़ी दिखाई देने लगती है। मार्ग निर्जन जंगल से होकर है। पक्की सीधी सड़क गई है। नंदगाँव पर्वत के ऊपर बसा है। नीचे भी थोड़ी बस्ती है। गेंदोखर, कदंब-वन, महरानो-गाँव, किशोरी-कुंड, कोकिला-बन, पूर्णमासी-कुंड, दोमन, अंजनो-खर, गरुड़-कुंड, हंस-सरोवर आदि आस-पास धार्मिक स्थान हैं। यहाँ दो मंदिर प्रसिद्ध हैं, जिनमें से मुख्य मंदिर राधा-कृष्ण का है, जो बिलकुल पर्वत की चोटी पर है। भाग्य-वश दर्शन खुले थे। दर्शन किए। कृष्ण और राधिका की मूर्ति बीच में है, और इधर-उधर यशोदा और नंद की विशाल मूर्तियाँ हैं। यह स्थान बड़ा रमणीक है। वर्षा-ऋतु में इन स्थानों का क्या कहना। नंदजी की यह राजधानी और निवासस्थान रहा है।

नंद-गाँव और बरसाने के बीच में मार्ग पर ही संकेत गाँव है। यहाँ राधारमणजी का मंदिर, महाप्रभुजी की बैठक, रास-चबूतरा तथा अन्य कई छोटे-छोटे दर्शनीय स्थान हैं। कहते हैं, चोरी-छिपा यहीं राधा-कृष्ण मिला करते थे।

यहाँ से आगे बढ़ने पर प्रेम-सरोवर-नामक प्रसिद्ध कुंड है, जो मुख्य सड़क से कोई एक फर्लांग दूर होगा। यहाँ रास-चौतरा, प्रेमबिहारी और राधागोपाल का मंदिर है। आचार्य महाप्रभु की बैठक है, तथा भगवान् की मूर्ति चबूतरे पर है। तालाब बड़ा सुंदर, पक्का और बड़ा बना

है। वर्षा-ऋतु में इसकी शोभा बहुत बढ़ जाती है। यह स्थान मुझे बहुत पसंद आया। यहीं विमल-कुंड है।

यहाँ से बरसाना गए। बरसाना नंद-गाँव से अधिक घना बसा है और सुंदर है। यहाँ काफ़ी दूकानें हैं। यहाँ की पर्वत-श्रेणी नंद-गाँव की पर्वत-श्रेणी से अधिक ऊँची है। यह वृषभानुजी की राजधानी थी। राधिका का बाल्यकाल यहीं व्यतीत हुआ था। यहाँ मोर-कुटी, मान-गढ़, यशोदा-कुंड, बल्लभ-कुंड, दुहावन-कुंड, मोहनी-कुंड, वृषभान-कुंड ललिता-कुंड, विशाखा-कुंड, सखियों का मंदिर आदि आस-पास की दर्शनीय वस्तुएँ हैं। यहाँ का सबसे विचित्र स्थान साँकरीखोर है, जहाँ दो पहाड़ियाँ मिली हैं, और जो इतनी सँकरी है कि दो आदमी भी एक साथ उस स्थान से नहीं निकल सकते। इसी पर बरसाना-गाँव बसा है। यहाँ की सबसे प्रसिद्ध दर्शनीय वस्तु श्रीजी का मंदिर है, जो पर्वत की चोटी पर है। मंदिर अत्यंत सुंदर है। अब तो बहुत बढ़िया और विस्तृत मंदिर बन रहा है। किसी सेठ ने लाख-डेढ़ लाख रुपया मंदिर के लिये दिया है। काफ़ी सीढ़ी चढ़ने के बाद मंदिर में पहुँचा। काफ़ी गर्मी थी फिर मेरा ६ वर्ष का लड़का भी साथ था। दर्शन की उत्सुकता ने मार्ग की गर्मी के कष्ट को दबा दिया। मंदिर बहुत ही अच्छा बन रहा है।

यहाँ से पहाड़-ही-पहाड़ होते विहार वन गए। सीधा पहाड़ी मार्ग था। पहाड़ की चोटी पर जयपुर-नरेश का

मंदिर है। राधाजी-सहित अष्ट सखियों का भी मंदिर है। मंदिर में अपूर्व चित्रकारी है, और पत्थर का बना है। वहाँ से बहुत नीचे पर घनी बस्ती है। पहाड़ से नीचे का दृश्य अत्यंत सुंदर मालूम पड़ता है। कंधे पर लड़के को बैठाए हुए मैं वहाँ से श्रीजी के मंदिर वापस आया। वहाँ से पीरी पोखर देखने गया। यह भी अब पक्की बन गई है।

बरसाना नंदगाँव से ६-७ मील है। बरसाने में नंद-गाँव की अपेक्षा में बड़ी रौनक़ है। बरसाना अत्यंत चित्ताकर्षक स्थान है।

यहाँ से काम-वन जाना होता है। यहाँ देखनेवाली चीजें निम्न-लिखित हैं—

मानसी-कुंड, वाराह-कुंड, सुरभी-कुंड, धर्म-कुंड, यक्ष-कुंड विमल-कुंड, यशोदा-कुंड, लंका-कुंड, पद्म-कुंड लुक-लुक-कुंड (और लुक-लुक गुफा भी), चक्र तीर्थ, महोदधि-तीर्थ, नंद-बैठक, नंद-कूप, महाप्रभु की बैठक, फिसलनी शिला, भौमासुर दानव की गुफा, भोजन-थाली, रास-चबूतरा, जल-शय्या, पांडवों के मंदिर, ब्रह्मा का मंदिर, शिवजी के मंदिर, धर्मराय का मंदिर, गोविंददेव का मंदिर, चरण-पहाड़ी, छटंकी-पसेरी आदि अनेक कुंड और अनेक मंदिर हैं। अघासुर का वध यहीं हुआ था। पाँचो पांडव अपने वनवास के समय यहाँ रहे हैं। यह स्थान भी अत्यंत सुंदर है।

यहाँ से फिर कोसी होते हुए रेल से मथुरा वापस आ गए। मथुरा के आस-पास कुछ दर्शनीय स्थान ये हैं—

मधुवन—यहाँ मधु-कुंड तथा आचार्य महाप्रभुजी की बैठक है। भगवान् ने यहीं मधु-दैत्य को मारा था, नारदजी का संदेह दूर किया था, तथा गोचारन-लीला की थी। कुछ दूर दक्षिण की ओर ताल-वन है, जहाँ बलदाऊजी ने धेनु दैत्य को मारा था। यहाँ बलभद्र-कुंड तथा बलदेवजी का मंदिर है।

कुमुद वन—यहाँ जल-शय्या, विहार-कुंड, महाप्रभुजी की बैठक तथा कपिल मुनि के दर्शन हैं।

मथुरा से लखनऊ आने के दो मार्ग हैं—एक हाथरस होते हुए कानपुर जाता है और एक आगरा होते हुए। दोनों ही मार्ग टूँडला के बाद कानपुर तक एक हो जाते हैं। कानपुर से गंगा नहाकर मैं लखनऊ आ गया।

देवीपाटन

गोंडा-जिले के अंतर्गत देवीपटन की बस्ती है। यह बल-रामपुर से ४ मील उत्तर की ओर है। यहाँ पटेश्वरी देवी का प्रसिद्ध मंदिर है। नवरात्रि में यहाँ बड़ा मेला होता है। लाखों यात्री आ जाते हैं, विशेषकर पहाड़ी प्रांत के तथा आस-पास के भाग के।

गढ़मुक्तेश्वर

गढ़मुक्तेश्वर एक अति प्राचीन बस्ती है। मेरठ नगर से २६ मील दक्षिण-पूर्व की ओर इसी जिले में गंगाजी के दाहने किनारे बसा है। किसी समय यहाँ एक बड़ा गढ़ था। यहाँ गढ़-मुक्तेश्वर शिवजी का एक बड़ा मंदिर है। गंगा-स्नान का मेला यहाँ बड़े जोरों से होता है। लाखों आदमी इस मेले में आते हैं, और हजारों दूकानें यहाँ आती हैं। गंगा-स्नान के मेले के अतिरिक्त वैशाख-पूर्णिमा, गंगा-दशहरा, अमावस, सोमवती अमावस और संक्रांति आदि में भी यहाँ लगभग एक लाख आदमी गंगा-स्नान को आते हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर (४ मील) बूढ़ी गंगा और गंगा का संगम है। एक ऊँचे टीले पर कई देव-मंदिर बने हैं। गंगा-जी के दो मंदिर कगार के ऊपर और दो कगार के नीचे हैं। एक मंदिर के निकट एक पवित्र कूप अंत-कूप है। लोगों का विश्वास है, उसमें स्नान करने से मनुष्य के सारे पाप नाश हो जाते हैं। इस स्थान के निकट ही अनेक सती-स्तंभ हैं। प्रायः ७०-८० होंगे। यहाँ के दर्शनीय स्थानों में एक अति प्राचीन दुर्ग भी है ।

यह अति प्राचीन तीर्थ-स्थान है। इसका वर्णन महाभारत और श्रीमद्भागवत में आया है।

स्टेशन के निकट ही गंगाजी हैं। पक्का घाट तथा धर्म-शाला भी है। मेले में नावों का कच्चा पुल बन जाता है।

रामघाट

अलीगढ़-बुलंदशहर-रोड के बीच में यह पवित्र तीर्थ है। यद्यपि इसका महत्त्व बहुत कुछ अब कम हो गया है, तो भी भारतवर्ष के कोने-कोने से यात्री यहाँ आया ही करते हैं। कार्तिक पूर्णिमा को बड़ा मेला होता है। यह एक छोटा-सा व्यापारिक नगर है। यहाँ बहुत-से मंदिर हैं। गंगाजी के दाहने तट पर यह बसा है। कहते हैं, इसे बलदाऊजी ने कोलासुर को हराने के पश्चात् बसाया था।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	२१	में स्वर्गीय शिवप्रसाद गुप्त छूट गया है।	
२२	८	का	को
२३	४	रहते	सीखते
६३	१४	गया	गाय
७४	१८	खसरी	खुमरी
७८	३	भगवान	भगवानदास
८६	२	रोपो	टोपी
९०	५	२	१२
११६	१७	Philosophy	Philosphy
१२१	३	में 'भाग में' के बाद बलभद्रघाट छूट गया है।	
१२१	५	बटुक	बटुकभैरव
१२२	८	पातरा	पोतरा
१२६	७	ताँगे	ताँबे
१२८	१	सुलीर	सुरीद
१५१	१२	बाऊँ	बाएँ

नोट—छपने में कहीं-कहीं मात्राएँ और अक्षर गिर गए हैं, पाठक कृपया सुधारकर पढ़ लें।

आवश्यक निवेदन

हैदराबाद के निज़ाम, भूपाल, रामपुर आदि के नवाब उर्दू के लिये लाखों रुपया ख़र्च कर रहे हैं। पर हमारे हिंदू-नरेश, ताल्लुक़-दार, ज़मींदार और रईस गाढ़ी नींद में सो रहे हैं—केवल ओरछा-नरेश, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, बिड़ला-बंधु आदि कुछ महानुभावों को छोड़कर। मुस्लिम-लीग ने हज़ारों उर्दू-पुस्तकालय देश-भर में खुलवाए हैं। पर हिंदू-सभा ने शायद ही कहीं कोई हिंदी-पुस्तकालय खुलवाया हो। हिंदू-सभा के पद-लोलुप कार्यकर्ता इस ओर से बिलकुल उदासीन हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि बिना राष्ट्र भाषा हिंदी की उन्नति के देश स्वतंत्र नहीं हो सकता, और हिंदू संगठित नहीं किए जा सकते। जो हो, हमारे यहाँ हिंदी-भाषा-भाषी करोड़पति हज़ारों और लखपती लाखों सज्जन हैं। उन्हें अपना कर्तव्य सुझाने के लिये कर्मवीर कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। कांग्रेस, हिंदू-महासभा, आर्यसमाज, सनातनधर्म-सभा, रामायण-मंडल, गीता-मंडल, महंत-मंडल, क्षत्रिय महासभा, ब्राह्मण-सभा, कायस्थ-महासभा, भार्गव-सम्मेलन आदि सभी सभाओं और मंडलों को जुटकर हमारी इस लाइब्रेरी-योजना को सफल बनाना चाहिए।

हमारे पढ़े-लिखे सब बंगाली, गुजराती, मराठी भाई अपने घर में अवश्य अपनी मातृभाषा की अच्छी-अच्छी पुस्तकें रखते हैं। वही भावना हिंदी भाषी प्रांतों में फैलाने के लिये उद्योगी स्त्री-पुरुषों की तुरंत आवश्यकता है। हमें अपने प्रांत में काम करने के लिये आप २-४ ही ऐसे व्यक्ति दीजिए, जिनमें Missionary Spirit हो, और जो हिंदी-सेवा में अपना जीवन दे सकें, साथ ही कुछ कमाएँ भी। कन्वेसर, प.ट.-टाइम-कन्वेसर एजेंट और स्थायी ग्राहक बनने के नियम हमसे मँगा लें।